जेएनयू परिसर

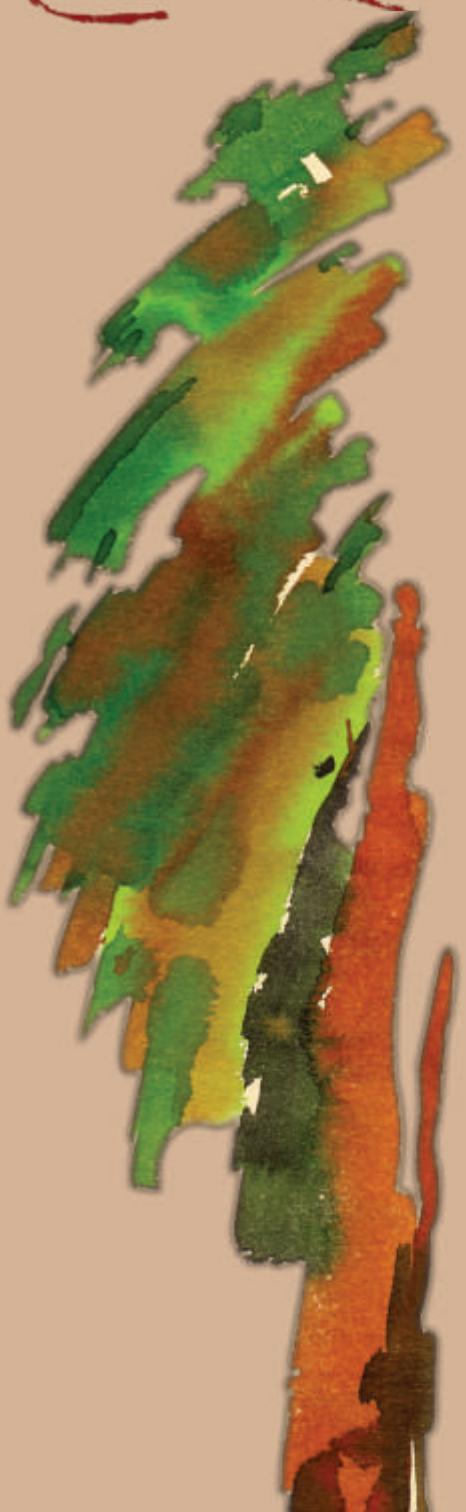

वर्ष–3 अंक–5 जनवरी–जून, 2015

"हमारे भव्य जंगलात उन वन्य जीवों एवं खूबसूरत परिंदों को उद्धृत करते हैं जो हमारे जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं। यदि ये भव्य वन्य जीवन हमें खेलने व देखने को ना मिले तो हमारा जीवन नीरस व रंगहीन हो जाएगा। अतः हमें बचे हुए वन्यजीवों एवं जंगलों का संरक्षण करना चाहिए।"

– पं. जवाहरलाल नेहरू

हनी बज़र्ड

शिकरा

स्टैप ईगल

वाइट आइड वजर्ड

परिसर के शिकारी पक्षी

परिसर के अब तक प्रकाशित अंकों के माध्यम से हमने यह समझाने का प्रयास किया है कि किस तरह से विगत लगभग साढ़े चार दशकों में जेएनयू का परिसर पर्यावरण की दृष्टि एवं सामुदायिक प्रयासों से विकसित हुआ है।

खाद्य शृंखला की दृष्टि से 'परिसर का पर्यावरण' की इस कड़ी में हम यह जानेंगे कि किस प्रकार से छोटे जीव–जन्तुओं की आबादी को नियंत्रण में रखने के लिये बड़े शिकारी पक्षियों ने भी परिसर में अपना डेरा जमा रखा है। जिनमें कुछ तो रेजीडेंट हैं व कुछ अप्रवासी हैं। मगर अचरज की बात यह है कि इन सभी की जीवनशैली एवं शिकार कौशल लगभग एक ही प्रकार का होता है जो छोटे–मोटे चूहों, छछून्दर, छोटे पक्षी, गिरगिट, खरहा, नेवले आदि के बच्चे व अन्य पक्षियों के अंडे व चूज़े शामिल हैं।

कपासी चील, काली चील, शिकरा, हनी बज़र्ड, जंगली कौवा आदि रेज़ीडेंट (प्रवासी) शिकारी पक्षी हैं जो परिसर में ही रहते एवं प्रजनन करते हैं वहीं दूसरी ओर कॉमन कैस्ट्रल, बूटेड ईगल, बोनाली ईगल, क्रैस्टेड स्टैप ईगल, शार्ट इयर्ड ऑऊल (छोटे कानों वाला ऊल्लू) आदि शीतकालीन अप्रवासी शिकारी पक्षी हैं।

इन पक्षियों का आकार काफी बड़ा होता है और इसी कारण इनके डैने या पंखों का फैलाव भी लगभग 3 से 5 फुट तक का होता है। मजबूत नुकीले पंजे (टैलन्स), मुड़ी हुई पैनी चोंच जो शिकार को चीरने में सक्षम होती है एवं अत्यंत पैनी नज़र जो शिकार को कई कि.मी., से खोज लेती है इन पक्षियों के हथियार होते हैं। इन सभी खूबियों से लैस इन शिकारी पक्षियों के शिकार कौशल का नज़ारा देखने में अत्यंत अद्भुत होता है। गर्म हवाओं के थर्मल करंट्स का उपयोग करते हुए ये शिकारी हवा में मंडराते रहते हैं व कई तो हवा में स्थिर भी हो जाते हैं। जैसे ही इन्हें शिकार नज़र आता है ये गोता मार कर एक ही वार में उसका काम तमाम कर देते हैं। कुछ शिकारी पक्षी जैसा कि उनके नाम से ही विदित है का मुख्य भोजन केवल सर्प ही होते हैं। जिनमें 'शॉर्टटोड स्नैक ईगल' व 'क्रैस्टेट सर्पेंट ईगल' शामिल है। ये सर्पों की आबादी को नियंत्रित रखते हैं। 'बार्न ऑऊल', 'ईगल आऊल' व 'शॉर्ट ईयर्ड ऑऊल' चूहों की आबादी को काबू में रखते हैं।

कुछ शिकारी जैसे स्टैप्स ईगल व सफेद गिद्ध अवसरवादी होते हैं। ये अन्य पक्षियों के शिकार को भी चुरा लेते हैं अन्यथा मृत जीवों को खाकर सफाई अभियान में सहयोग देते हैं। अतः ये सभी शिकारी पक्षी पर्यावरण की दृष्टि से खाद्य शृंखला की एक अत्यंत महत्वपूर्ण कड़ी है व इनके संरक्षण से ही मानव जीवन का उद्धार संभव है।

– डॉ. सूर्य प्रकाश

l ikn d&eMy

v/;{k

प्रो. गोबिन्द प्रसाद

lnL;

प्रो. सौमित्र मुखर्जी

डॉ. संदीप चटर्जी

डॉ. देवेन्द्र कुमार चौबे

डॉ. डी.के. लोबियाल

डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर

श्रीमती पूनम एस. कुदेसिया

l ikn lg;kx

सुमेर सिंह

i c/k l ikn lg;kx

डॉ. सूर्य प्रकाश

d yh xkQh rFkk vkoj.k fp=

डॉ. गोबिन्द प्रसाद

QkVk

वकील अहमद

Vkbi lfVx

शिव प्रताप यादव

l id

संपादक,

जेएनयू परिसर

हिंदी एकक

301, प्रशासनिक भवन

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

दूरभाष : + 91 11 26704023, 26704283

ई–मेल : jnuparisar@mail.jnu.ac.in &
hindiunit@mail.jnu.ac.in

संपादन / संचालन : अवैतनिक

वर्ष–3 अंक–5

जनवरी–जून 2015

l ikndh;@2

ckrphr@3

प्रोफेसर तुलसीराम से धर्मवीर यादव 'गगन' की बातचीत

jkbV V fMxuhQkbM MFk@13

योगेश भटनागर

Mk- ry lhjke@17

प्रोफेसर एस.एन. मालाकार

te uh dh ;k=k & Mk; jh d dN iUu@20

प्रशांत कुमार पाण्डेय

lkn;%'kkL= dh Hkkjrh; ijijk@21

राधा वल्लभ त्रिपाठी

vuqokn v/;;u cuke 'kk/k@28

dHkh tc ;kn vk tkr@30

प्रोफेसर नामवर सिंह

^enfgk;k* e fpf=r opLo vkj 'kk"k.k dh lLÑfr % ,d voykdu@32

डॉ. राम चंद्र

ikLV vfHk?kkr tU; fexh ,o bldh lHkkouk,@37

प्रोफेसर दीपक शर्मा

yfxd vlekurk ,o vU;k; % ,d lkekftd vfHk'kki@40

डॉ. सत्येन्द्र कुमार,

lo/kke leHkko % lr lxe dk vkReeFku@43

डॉ. नीरज कुमार श्रीवास्तव

bUr tkj@45

बलवन्त सिंह

viuk fo'ofo|ky;@46

अभिषेक सौरभ

Je dk u;k lkn;%'kkL= % ^lkoyk jx* vkj dfo d eu dk ^gjkiu*@52

भावना बेदी

^ledkyhu fgUnh miU;kl % lg&fpru* fo"k; ij t,u; jk"Vh; lxk"Bh@54

डॉ. स्नेह सुधा

jk tHkk"kk;h xfrfof/k;k@60

t,u; ifjlj में प्रकाशित विचार लेखकों के हैं। उनसे विश्वविद्यालय अथवा संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं।

likndh;

'जेएनयू परिसर' का अंक–5 आपके हाथों में है। इस अंक की अवधि जनवरी–जून 2015 है। पत्रिका प्रकाशन की निरंतरता में यह हमारा पांचवा प्रयास है। इसके मध्यम से जेएनयू समुदाय की वैचारिक अभिव्यक्ति एवं सामासिक संस्कृति की झलक दिखलाने का प्रयत्न किया गया है। 'जेएनयू परिसर' में न केवल साहित्यिक विचारधारा की अभिव्यक्ति होती है, अपितु विभिन्न लेखकों के मन में उद्वेलित विचार साझा किए गए हैं।

प्रस्तुत अंक जेएनयू प्रोफेसर तुलसीराम पर विशेषांक है। इसमें धर्मवीर यादव 'गगन' से प्रो. तुलसीराम के साक्षात्कार का विशेष महत्व है। इसमें दलित–आदिवासी समाज के सामाजिक सांस्कृतिक महत्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है। योगेश भटनागर के 'राइट टु डिगनीफाइड डैथ' में पिता–वात्सल्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। प्रोफेसर एस. एन. मालाकार ने डॉ. तुलसीराम के साथ अपनी यादों को संजीदगी से पेश किया है। राधावल्लभ त्रिपाठी ने 'सौंदर्यशास्त्र की भारतीय परंपरा' भारतीय परम्पराओं के सौंदर्य की छटा को उकेरा है। डॉ. रामचन्द्र ने डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' में चित्रित दलित समाज की त्रासदी और भारतीय समाज की विडम्बना का वर्णन को डॉ. तुलसीराम के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि बताया है। प्रो. दीपक शर्मा ने मिर्गी का वैज्ञानिक चित्रण किया है। डॉ. सत्येन्द्र कुमार के लैंगिक असमानता को एक सामाजिक कुरुति के रूप में पेश किया है। विभिन्न रचनाओं ने आपकी कविता/रचनाओं के माध्यम से अपने हृदय के उद्गार अभिव्यक्त किए हैं।

आशा है इस अंक को भी सुश्री पाठकगण रुचिकर और उपयोगी पाएंगे और अपनी बहुमूल्य प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों से हमें अवगत कराएंगे ताकि पत्रिका के अगले अंक को और अधिक सार्थक व लक्ष्यपरक बनाया जा सके – इसी आशविस्त बोध के साथ।

प्रो. गोबिन्द प्रसाद
संपादक

nfyr efDr dk lcl cMk gfFk;kj ^f'k{kk* & ikQ lj rylh jke

¼ikQ lj rylh jke l èkeohj ;kno ^xxu* dh ckrphr½

/keohj ;kno ^xxu^

xkre c) dh ^d#.kk* dh voèkkj.kk D;k g \

बौद्ध दर्शन मानव मुक्ति का दर्शन है, जो करुणा पर आधारित है। बुद्ध ने सम्पूर्ण मानवता को मध्यम मार्ग अपनाने की बात कही। इस अवधारणा और दर्शन को समाज के बीच प्रयोग की तरह रखा और बीच का रास्ता निकालते हुए मध्यम मार्ग अपनाने को कहा। इस प्रक्रिया में उन्होंने अपना पहला उपदेश सारनाथ में दिया था। वहँ उन्होंने पाँच भिक्षुओं के सामने कहा कि भारत में दो तरह के अतिवाद हैं – एक तो, अतिवादी सैक्सुअल लाईफ आदमी का बहुत अधिक वासनामय जीवन और दूसरे, 'एक्सट्रीम एसेटीक लाइफ' है। 'एक्स्ट्रीम एसेटीक लाइफ' का मतलब है – भूखे रहकर तपस्या करके, शरीर को कष्ट देना, तपस्वी जीवन जीना। उन्होंने कहा – एक तरह का यह अतिवाद है। इसके बाद उन्होंने कहा – मैं इसके बीच का रास्ता ढूँढ़ निकाला हूँ। उसी पर उनका बौद्ध दर्शन शुरू हुआ कि "दुनिया में दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का निवारण है और उसका मार्ग भी है।"

xkre c) us ftl ekx dh ryk'k dh] mldk ckj e crk,A

उन्होंने जिस मार्ग की तलाश किया, वह 'आष्ठांगिक मार्ग' कहलाया। उसमें आठ चीजों को सम्मिलित किया गया, जिसमें सम्यक् वाणी होनी चाहिए। व्यक्ति अगर संयत ढंग से बोलता है, प्यार से बोलता है, तो उसको कोई तकलीफ नहीं होगी। वहीं गुस्से में बोले, क्रोधित होकर बोले, तो कहीं पिट भी सकता है, जिससे उसे दुःख होगा। इसलिए वाणी को बहुत संयत रखना चाहिए; यदि दुःख से निवारण चाहते हो तो। उन्होंने कहा – उसी में भोजन प्रॉपर होना चाहिए। ये नहीं कि ढेर सारा 'खा लिया', जिससे तरह–तरह की बीमारियाँ होती हैं। इसके लिए 'सम्यक् भोजन' जरूरी है। उन्होंने पिफर कहा – शरीर को ठीक रखने–करने के लिए, जैसे विपस्यना', जिसे मेजिटेशन' कहते हैं, अर्थात् माईंड को कंट्रोल में रखना जरूरी है। माईंड अगर कंट्रोल में नहीं है तो बॉडी बिल्कुल 'एनार्किकल' हो जाती है। माईंड कंट्रोल में न होने के चलते सैक्सुअल लाईफ बहुत एनार्किज्म फैलाती है। इस पर उनका साईंटीफिक सिद्धान्त ये हुआ कि जैसे बहुत से लोग कहते हैं न कि हमारा शरीर कंट्रोल में नहीं है। बहुत कहते हैं कि ये गलत है। माईंड कंट्रोल में नहीं है, क्योंकि माईंड से ही सब कुछ कंट्रोल होता है। शरीर भी या अन्य कोई चीज। इसी तरह से उन्होंने बताया कि 'सम्यक् ज्ञान' होना चाहिए। ये नहीं कि ज्ञान समाज के लिए नुकसानदेय हो। आज के सन्दर्भ में बुद्ध के दर्शन को देखा जाय तो दुनिया में घातक हथियार बनाए जा रहे हैं, जो दुनिया के लिए खतरनाक हैं। यह सम्यक् ज्ञान नहीं है। यह समाज को नुकसान पहुँचाता है। इसी तरह उन्होंने कहा – 'सम्यक् व्यापार' होना चाहिए। लेकिन यह व्यापार बिना किसी को कष्ट पहुँचाए होना चाहिए। इस तरह का व्यापार ठीक है, लेकिन यदि वह ज्यादा अनावश्यक मुनाफा वसूलता है तो वह ठीक नहीं, क्योंकि इससे आदमी को दुःख होता है।

इसीलिए उन्होंने बताया कि किस प्रकार की चीजों का 'व्यापर' किया जाना चाहिए और किस प्रकार की चीजों का 'व्यापार' नहीं किया जाना चाहिए। उसमें उन्होंने बताया कि 'हर', 'ड्रग्स' का व्यापार नहीं करना चाहिए। शराब आदि का व्यापार नहीं करना चाहिए। इसमें गौतम बुद्ध का 'सम्यक् विचार' प्रकट होता है। इन विचारों में ही बुद्ध की 'करुणा' परिलक्षित होती है।

वे जानवरों की हत्या भी नहीं चाहते थे। कर्मकांडों में हजारों–हजार जानवरों की बलि दी जाती थी। उसको उन्होंने बन्द करवाया। बुद्ध के जमाने में सारे कर्मकांड बन्द हो गए थे। जन्म से लेकर मरण तक के, ब्राह्मणों द्वारा फैलाये जाने वाले कर्मकांडों और उससे जो वे पैसे वसूलते थे, उन्होंने उन सबका विरोध किया और अन्धविश्वास के खिलाफ मुहिम छेड़ी।

D;k c) dh d#.kk dk fl)kUr cf)Te dh jx&jx e g \

मैं बुद्ध की करुणा की बात कर रहा था कि बुद्ध ने इसके सन्दर्भ में कुछ नियम बनाए। इन नियमों का ग्रन्थ 'विनय–पिटक' है। उसमें बुद्ध का जो तीसरा नियम है, वह यह कि – मानव हत्या, आत्महत्या या किसी भी जानवर की हत्या सबसे बड़ा दोष है। उन्होंने यह भी कहा – यह नहीं होना चाहिए। किसी की भी हत्या नहीं होनी चाहिए। इस तरह से 'करुणा' का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस अवधारणा की गहराई देखिए कि कहीं किसी जानवरी को काटा जा रहा है या हत्या की जा रही है और आप देख रहे हैं। यह कटते और हत्या होते हुए देखना भी 'हिंसा' है। यहाँ तक

धर्मवीर यादव 'गगन', शोधार्थी : हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, मो. 09013710377

कि जानवर उस समय चिल्लाता है, तो उसकी आवाज सुनना भी 'हिंसा' है। उन्होंने कहा है कि 'करुणा' का सम्बन्ध, तो यहाँ तक है कि हिंसात्मक कर्म को देखना या सुनना सब महादोष है। इसलिए इसकी अगर कहीं सम्भावना भी है कि कोई जीव को मारने जा रहा है और आप रोक नहीं सकते तो आप वहाँ से कम–से–कम हट जाइए। अगर यह निश्चित है कि वह मारा ही जाएगा, चाहे वह कोई भी जीव हो, आप वहाँ तक हट जाए कि उसके चिल्लाने की आवाज आपको सुनाई न दे। इस तरह बुद्ध की करुणा तो रग–रग में है। उनका पूरा सिद्धान्त ही करुणा पर आधारित है। बुद्ध ने इसीलिए कहा कि – बैर बैर से नहीं जाता है, बैर मित्रता से जाता है। केवल आप उतारू हो गए हैं कि एक आदमी किसी कारणवश आपका दुश्मन हो गया और आप कहें कि देख लेंगे। और आप जिन्दगी भर उसका पीछा करते रहे। उसका पीछा करने के चक्कर में आप जिन्दगी भर दुःखी रहेंगे।

**xkSre cq) dk Øks/k ij D;k fopkj gS **

'क्रोध' के बारे में बुद्ध ने कहा कि – यह खौलते हुए पानी के समान है, जिसमें अपना 'चेहरा' नहीं दिखाई देता। इसलिए क्रोध बहुत खतरनाक होता है। वहीं, यदि पानी शान्त रहे और उसमें आप देखें तो आपका पूरा चेहरा दिखाई देगा। इसीलिए बुद्ध ने कहा कि क्रोध कभी नहीं करना चाहिए। वह स्वयं को ही नुकसान पहुँचाता है, दुःख देता हैऋ वैसे ही जैसे खौलते हुए पानी में अपना 'चेहरा' दिखाई नहीं देता।

**D;k xkSre cq) dh d#.kk ekuo] i'q&if{k;ksa vkSj tho&tUrqvksa rd foLrkj ysrh gS **

गौतम बुद्ध की 'करुणा' मानव कल्याण के लिए ही नहीं, बल्कि जानवरों तक के लिए भी है। जैसा कि मैंने कहा था कि उन्होंने यज्ञों में दी जाने वाली पशु बलि और कर्मकांडों को बन्द करवाया। इतना ही नहीं, उन्होंने पेड़–पौधों के बारे में, जैसा कि बुद्ध के जीवन की एक बड़ी रुचिकर कहानी है, जो 'सुक्त पिटक' में मिलती है – वे एक बार बनारस गए हुए थे। गर्मी का दिन था। बहुत गर्मी पड़ रही थी। पैर जल रहा था। उन्होंने ताड़ के छोटे पौधे, जिसका पत्ता बड़ा चौड़ा होता है, के पत्ते को काटकर दोनों पैरों में जूते की तरह बाँध लिया और उसके बाद वे भिक्षुओं के पास गए।

बनारस में सारनाथ के भिक्षुओं ने बुद्ध के पैरों में ताड़ के पत्तों का एक तरह से जूता बनाकर पहने देखकर सारे बौद्ध भिक्षुओं ने ताड़ के पत्तों को काटकर जूता बनाकर पहनना शुरू कर दिया। हुआ यह कि बनारस क्षेत्र के ताड़ के वृक्ष गायब होने लगे। क्योंकि छोटेपन पर ही काट लेने से वो खत्म हो जाते थे। इसकी शिकायत कुछ बौद्ध भिक्षुओं ने बुद्ध से किया और कहा कि आपने ऐसा किया था, जिससे सारे भिक्षु भी ऐसा कर रहे हैं। इससे सारे ताड़ के वृक्ष खत्म हो रहे हैं। बुद्ध ने इसको बड़ी गम्भीरता से लिया और उन्होंने नियम बनाया, जो 'विनय पिटक' में दर्ज है। 'विनय पिटक', जो बौद्धिष्ट कानून की किताब है। उसमें उन्होंने कहा – "आज के बाद कोई भी भिक्षु, किसी पेड़े–पौधे के पत्ते का इस्तेमाल पैरों में जूता बनाने के लिए नहीं करेगा और उनको किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाएगा।"

इस तरह बुद्ध की करुणा मानव, जानवर, पेड़–पौधों और सबके लिए थी। इस सन्दर्भ में बुद्ध अकेले व्यक्ति थे। आजकल बेतहाशा जंगल काटे जा रहे हैं। बेतहाशा जंगली जीव मारे जा रहे हैं। दुनिया भर में हुल्लड़ मचा हुआ है कि उनकी रक्षा होनी चाहिए। लेकिन ये बात तो ढाई हजार साल पहले बुद्ध ने उठाई थी। तो बुद्ध के विचार हर क्षेत्र में बहुत आधुनिक थे। चूँकि मुझ पर बुद्ध का बहुत अधिक प्रभाव है, इस वजह से मेरे लेखन में बौद्ध दर्शन जगह–जगह इमर्ज होता रहता है।

**D;k ^enfg;k* ;kruk dh ^d#.kke;* vfHk0;fDr gS **

नहीं! करुणामय तो नहीं कहूँगा, लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ, यथार्थ की अभिव्यक्ति है। जहाँ तक करुणा का सम्बन्ध है, निश्चित रूप से मैं बुद्ध की करुणा से प्रभावित हूँ या कहिए कि पूरे बौद्ध दर्शन से। अगर ये कहीं परिलक्षित होती है तो इसका मतलब ये नहीं है कि वह करुणामयी अभिव्यक्ति है, बल्कि सैद्धान्तिक तौर पर मैं बौद्ध दर्शन से एकदम जुड़ा हुआ हूँ, तो आप कह सकते हैं कि 'मुर्दहिया' में बौद्ध दर्शन जगह–जगह परिलक्षित होता है। उसको मैं इस तरह से देखता हूँ।

**Kku l tMu dh ifØ;k e if'peh mRrj&iwoZ'k dh nfyr vkRedFkkvksa e tgk ^eSyh th i<&fy[k dk tkr lekkjuh gS* dh ckr vkrh g] ogh iwokpy l vkuokyh nfyr vkRedFkk ^enfg;k* e ^bLdy uk tbck r fpfB;k dk i<h * tSlh ckr gA ;g 'kks"k.k l efDr dh dSlh vfHk0;fDr gS **

'जाति' सुधारने का जहाँ तक सवाल है, उससे तो जाति खत्म नहीं होगी। मूल समस्या जो दलित समाज की है, आदिवासी समाज की है, कुछ हद तक पिछड़े समाज की भी है कि 'जाति–व्यवस्था' को खत्म करना है, बिना जाति–व्यवस्था के खत्म हुए इस समाज का कल्याण कभी सम्भव नहीं है। असली बात तो यही है कि जाति–व्यवस्था खत्म होनी चाहिए। बुद्ध ने तो यह सवाल ढाई हजार साल पहले, जाति–व्यवस्था के खिलाफ उठाया था। यही कारण था कि जाति–व्यवस्था के विरोध में बुद्ध का जो सामाजिक आन्दोलन था, उसके ही चलते ब्राह्मण गौतम बुद्ध के सबसे

बड़े दुश्मन हो गए, क्योंकि बुद्ध ने कर्मकांड बन्द कराया। यज्ञों में पशु बलि बन्द हो गई। वो (ब्राह्मण) जिसको 'रिचुअलिज्म' कहते हैं और बताते हैं कि हिन्दू धर्म तो सौ प्रतिशत 'कर्मकांड' या 'रिचुअलिज्म' पर आधारित है, जन्म से लेकर मरण तक का कर्मकांड है।

इतना ही नहीं, अंधविश्वासों के माध्यम से, आधुनिक समय में, 'कुम्भ जैसे नहान' का आयोजन करके, हिन्दू धर्म को बनाए रखने के लिए, यह अन्धविश्वास पफैलाते हैं कि कुम्भ में जाकर नहा लो, सारे पाप खत्म हो जाएँगे। यही विचार हिन्दू धर्म के लोगों को जाति–व्यवस्था के तहत अत्याचार के लिए प्रेरित करता है – मर्डर के लिए, रेप के लिए, घुसखोरी के लिए, हर तरह के अत्याचार के लिए, जिसको वे 'पाप' कहते हैं। हिन्दू धर्म के लोग यह मानकर चलते हैं कि जीवन भर हम 'पाप' करते रहे हैं तो कोई बात नहीं, अन्त में गंगा या कुम्भ में नहा लेंगे तो जीवन भर का 'पाप' धुल जाएगा। इस तरह हिन्दू धर्म इन अन्धविश्वासों के माध्यम से 'पाप' करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

**xkSre cq) us bu lc fLFkfr;ksa ij D;k fopkj j[kk gS **

गौतम बुद्ध ने इन सबका विरोध किया। उन्होंने यहाँ तक कहा कि जो लोग गंगा में स्नान करने जाते हैं, वे जिस रथ या तांगे का उपयोग करते हैं, जिसे आदमी खींचता है (उस समय गाड़ी तो थी नहीं), गड़ारी के ऊपर लकड़ी की पटरी लगाकर उस पर आदमी बैठाकर एक आदमी उसे खींचता था। बुद्ध ने कहा कि इस प्रकार की गाड़ी पर बौद्ध भिक्षुओं को नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि उनकी वो यात्रा मानव शोषण और अन्धविश्वास के लिए है। वो तथाकथित 'पाप' धोने के लिए है, जिसके चलते और पाप बढ़ता है। मानव मुक्ति के लिए, बुद्ध ने यहाँ तक नियम बनाए कि ऐसे लोगों के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिए।

lj vki ^tkfr lq/kkjus* vkSj ^tkfr [kRe* djus dh lUnHkZ esa crk jgs FkA

जहाँ तक 'जाति सुधारने' का सवाल है, तो जाति सुधारने से जाति खत्म नहीं होगी या जातिवाद खत्म नहीं होगा। बल्कि जाति सुधारने से जातीय स्तम्भ और मजबूत होते हैं। 'जाति सुधारने' की अवधारणा बहुत ही खतरनाक है। जाति को बनाए रखने वाले लोग ही जाति–सुधार की बात करते हैं, जिसमें दयानन्द सरस्वती और बहुत सारे लोग थे। वे लोग जो जाति में विश्वास करते थे। यही लोग जाति–सुधार की बात करते थे, लेकिन यह बहुत खतरनाक बात थी कि एक तरफ 'जाति–सुधार' की बात करते थे और दूसरी तरफ वे आर्य समाज की स्थापना करने की बात करते थे। आर्य समाज तो पूरी तरह से जातिवादी समाज था, जो वेदों पर आधारित है। जाति–व्यवस्था तो आर्यों में ही पनपी है। इसलिए यह जाति–सुधार वाली बात तो मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है।

^eSa fg;k* esa vkid firk dh i<kbZ dh ftnn fdl mn~n'; dh ikfIr ds fy, Fkh \ D;kfd o dgk djrs Fks & ^bLdwy tkdj r fpfB;k dks i<h *

जहाँ तक 'मुर्दहिया' की बात है तो 'ईस्कूले ना जइबा त चिठिया के पढ़ी ?' यह शिक्षा की जागरुकता थी। जिस तरह से हमारे गाँव में ब्राह्मण चिट्ठी पढ़ने में आना–कानी करते थे, बहुत बेईज्जत करते थे, गालियाँ बकते थे, दूर किसी ऊँची जगह पर रखकर चिट्ठी पढ़ते थे। उसको छूते नहीं थे। जब वो पन्ना एक तरफ खत्म हो जाता तो उस पन्ने को 'दलित' ही उलटता था। इस तरह अपमान करके वो चिट्ठी पढ़ते थे। तब, जब मैं स्कूल नहीं जाता था। वास्तव में, स्कूल ठीक नहीं लगता था। स्कूल में बहुत भेद–भाव था। मेरे पिता मारते हुए स्कूल ले जाते थे और कहते थे – "स्कूले ना जईबा त चिठिया के पढ़ी ?" इसमें सबसे बड़ी बात यह थी कि शिक्षा जाति–व्यवस्था का शिकार होने से बचाती है। जैसे चिट्ठी ब्राह्मण पढ़ते थे तो वो जातीय घृणा या उस तरह का उद्बोधन करते थे। जब चिट्ठी मैं पढ़ने लगूँगा तो उस परिस्थिति से छुटकारा मिल जाएगा। यह उनकी घृणा और अपमान से मुक्ति की कोशिश थी।

**D;k ^f'k{kk* nfyr eqfDr dk lcls cMk gfFk;kj gS **

हाँ, शिक्षा से जाति–भेद दूर हो सकता है। सबसे बड़ी बात यह कि बिना शिक्षा के तो कुछ हो ही नहीं सकता। दलित समाज क्यों पिछड़ गया ? या पिछड़े लोग क्यों पिछड़ गए ? क्योंकि सदियों से उनके बीच शिक्षा नहीं आने दी गई। इस कारण उनके पास कोई उपाय नहीं था। इसलिए वो किसी जमींदार का हल जोतें, हरवाही (हल चलाएँ) करें। जब यह समाज शिक्षित होने लगा, जिसका एक मात्र कारण यह था कि डॉ. अम्बेडकर ने 'पूना पैक्ट' के चलते संविधान में दलितों के लिए शिक्षा का जो प्रोविजन किया, उसके चलते दलित, पिछड़े और आदिवासी पढ़ने–लिखने लगे। अन्यथा आजादी से पहले अम्बेडकर ने तलाशा कि भारत में कितने ग्रेजुएट हैं। बहुत तलाश करने के बाद उनको आजादी से पहले पाँच ग्रेजुएट मिले थे। आज तो लाखों लाख की संख्या में ग्रेजुएट हैं, पोस्ट ग्रेजुएट हैं, और हजारों की संख्या में पी–एच.डी. भी हैं। ये कमाल डॉ. अम्बेडकर का ही था, जिसके चलते शिक्षा दलितों के बीच आई। जब दलितों के बीच शिक्षा पहुँची तब महाराष्ट्र में कट्टर ब्राह्मण कहने लगे कि 'शिक्षा दलित के घर में गई, इसलिए कलयुग आ गया।' मतलब दलितों के बीच आ रही शिक्षा का विरोध इस पैमाने पर वहाँ के ब्राह्मणों में था और वे लगातार अन्धविश्वासों के

माध्यम से दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों के शिक्षा पाने की प्रक्रिया का विरोध कर रहे थे।

इसलिए मैं मानता हूँ कि "शिक्षा दलित मुक्ति का सबसे बड़ा हथियार है।" यही कारण था कि मेरे पिता अनपढ़ होते हुए भी पढ़ने–लिखने पर जोर देते थे। यद्यपि कि उनका उद्देश्य सिर्फ चिट्ठी पढ़वाने तक ही था, लेकिन वही आधार मेरे लिए उच्च शिक्षा का माध्यम बना। जब मेरी पढ़ाई छुड़ा दी गई तो मैं घर से भाग गया। और जैसे–तैसे बहुत कष्ट के साथ मैं इस स्टेज पर पहुँचा हूँ। आज मैं भारत के सर्वोच्च शोध संस्थान जे.एन.यू. तक पहुँच कर प्रोफेसर बना हूँ तो इसको आधार वही है। यद्यपि कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिए गए संवैधानिक अधिकार 'आरक्षण' और मेरे परिश्रम का बहुत बाद योगदान है। ये न होता तो जहाँ सिर्फ इस देश के सवर्ण पहुँचते हैं, मैं वहाँ तक नहीं पहुँच पाता। वास्तव में, शिक्षा एक बहुत बड़ी चीज है। शिक्षा से मुक्ति अवश्य मिलती है। जब व्यक्ति शिक्षित हो जाता है तो वह बुराइयों के खिलाफ लड़ना शुरू कर देता है। यद्यपि कि यह लड़ाई बहुत बड़ी है, बहुत लम्बी है। जाति–व्यवस्था इतनी गूढ़ है कि उसको बहुत आसानी से नहीं समझा जा सकता है। दलितों का ही एक हिस्सा, इसमें विश्वास रखता है कि वो पिछले जन्म में खराब काम किया था, इसलिए इस जन्म में दलित होकर उसका परिणाम भुगत रहा है। ऐसा मानने वाला बहुत बड़ा हिस्सा है दलितों का। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मध्य युग है। उस समय सन्तों का बोलबाला था। सन्त जाति–व्यवस्था के विरुद्ध आवाज तो उठाते थे, लेकिन उनकी आवाज भगवान से विनती तक रह जाती थी, जिसमें कबीर भी थे, सन्त रविदास भी थे और दूसरे लोग भी थे, जो ईश्वर से विनती करते थे। एक तरह से 'जाति–व्यवस्था' के खिलाफ शिकायत करते थे।

**cgr lkj nfyr&fiNM+s i<+s&fy[k gkus d ckotn Hkh fgUnRo dk t'k&dk&r'k <+kr tkr gA D;k gekj lekt dk lkekftd&lkL—frd xykeh l efDr d fy, lpr f'k{kk dh t:jr g **

कबीर के समक्ष, मध्य युग में महाराष्ट्र में एक 'चोखामेला' नाम के सन्त थे। उन्होंने इसी दर्शन का प्रचार किया कि हम पिछले जन्म में खराब काम किये थे, इसलिए इस जन्म में हम दलित हुए। ये उनकी मूल स्थापना थी। यद्यपि कि वो दलित सन्त थे, बड़े सन्त थे। और वो 'बिठोवा टेम्पुल', जो विष्णु का टेम्पुल है, महाराष्ट्र में बिठोवा टेम्पुल कहा जाता है। उसमें उनकी मूर्ति लगाई गई है। उनकी इस दार्शनिक और भक्ति भावना के चलते 'बारकरी' निकलती है। बारकरी का मतलब है–शोभा यात्रा। हिन्दी में इसे शोभा यात्रा कहते हैं। तो हर साल 'बिठोवा के टेम्पुल' पर बारकरी शोभा यात्रा में लाखों लाख लोग महाराष्ट्र के कोने–कोने से पैदल चल कर जाते हैं। लेकिन उनकी भी स्थापना यही थी कि पिछले जन्म में हम खराब काम किये थे, इसलिए इस जन्म में हम शूद्र हुए या दलित हुए। इस तरह की अन्धविश्वासी अवधारणा दलितों के एक बड़े हिस्से में थी।

आज भी तमाम पढ़ाई–लिखाई के बावाजूद दलित गंडा (रक्षा) हाथ में बाँध कर घूमते रहते हैं। पढ़े–लिखे आईएएस ऑफिसर हों यो जो जितने ऊँचे पद पर हैं, वो उतना ही ज्यादा कर्मकांडी हैं। दलितों में भी हैं। वो अपने को शो करना चाहते हैं कि वो सवर्णों से कम नहीं हैं। 'भगवती जागरण', कथा, पूजा, अन्य कर्मकांड बड़े पैमाने पर दलित करते हैं। इससे साबित होता है कि चूँकि, जाति–व्यवस्था को ब्राह्मणों ने 'धर्म की देन' बताया। सारे हिन्दू ग्रन्थों में यह कहा गया कि 'जाति–व्यवस्था' को 'भगवान' ने बनाया है। गीता का अट्ठारहवाँ अध्याय तो इसी पर है। कृष्ण बार–बार जोर देकर ये कहते हैं – 'मैंने ही जाति–व्यवस्था बनाई है। जो भी वेदों का विरोध करेगा, मैं उसका संहार करूँगा।' इसी को वो कहते थे – 'मैं धर्म की रक्षा के लिए बार–बार जन्म लेता रहूँगा।' इसे धर्म से जोड़ने का अर्थ है केन्द्र में जाति का होना। इसीलिए इसे जाति से जोड़ा गया। चूँकि जाति–व्यवस्था धर्म से जुड़ी हुई है। उसकी गलत ढंग से व्याख्या की गई है, जिसमें यह कहा गया है कि ईश्वर ने जाति–व्यवस्था बनाई है। जाति–व्यवस्था तो 'ऑफ्टर ऑल' आदमी ने ही बनाई है और 'ईश्वर' को भी आदमी ने ही बनाया है, न कि ईश्वर ने आदमी को। लेकिन यह अन्धविश्वास फैलाया गया कि ईश्वर अनन्त है, ये है, वो है। दुनिया भर का भ्रम फैलाया गया है। वो ऊपर देखकर कहते हैं कि ईश्वर ऊपर रहता है। ऊपर आसमान में बैठे हुए वो देख रहा है। वह सबका पालनकर्ता है और उसी ईश्वर को बताया गया है कि वह संहार करता है।

दुनिया का वह पहला ईश्वर है, अन्य धर्मों की अपेक्षा हिन्दू धर्म में कि, जो हत्याएँ करता है, हथियार लेकर चलता है। इस धर्म के सारे हिन्दू देवी–देवता हथियारबन्द हैं। जिस धर्म के देवी–देवता ही हथियारबन्द हैं, उस धर्म के फॉलोअर कैसे होंगे? आप इसी से अन्दाजा लगा सकते हैं। हिन्दू धर्म के ऐसे फॉलोअर शूद्र कहे जाने वाले लोगों की बड़े पैमाने पर हत्याएँ करते थे। यह प्राचीन काल से ही चला आ रहा है।

**fgUn i'k&if{k;k] dÙk&fcfYy;k dk rk N ldrk g] yfdu ,d 0;kid ekuo lenk; dk vNr ekurk gA D;k bldh tM+ ijEijk l tM+h gbZ g **

सबसे कुत्सित परम्परा छुआछूत की रही है कि, एक आदमी

दूसरे आदमी को छू नहीं सकता है। वो कहता है कि छूने से पाप लग जाएगा। जब कि वो कुत्ते पालेगा, बिल्ली पालेगा, उसको अपने हाथों से नहलाएगा–धुलाएगा। उसका उसको पाप नहीं लगता है। जानवरों को वो छू सकता है, लेकिन आदमी को नहीं। शूद्रक का एक इनट्रेस्टिंग नाटक है। कहने को तो शूद्रक का नाटक है, साहित्य का हिस्सा है, कल्चर का हिस्सा है। उस नाटक को पढ़िए तो उसमें एक जगह जिक्र आता है कि एक राजा का साला है। उसके दिमाग में थोड़ा–सा पागलपन है। वसन्त सेना नाम की बड़ी सुन्दर कन्या है। वो एक तरह से देह बेचकर अपना जीवन चलाती है। उस समय देह बेचकर जीवन चलाने की परम्परा थी। एक दिन वहाँ का वजीर रास्ते में इन्तजार कर रहा होता है, कि वसन्त सेना जब आएगी तो मैं उसे पकड़ लूँगा। वह थोड़े देर बाद देखता है कि वैसे ही पीला वस्त्र पहने एक व्यक्ति चला आ रहा है। वह समझता है कि वह वसन्त सेना आ रही है। तो बहुत खुश होता है। जब वह नजदीक आ जाता है तो देखता है कि वो वसन्त नहीं है, बल्कि एक बौद्ध भिक्षु है, पीला चीवर पहने हुए। तो उसको गाली देकर उससे पूछता है कि कहाँ से आ रहे हो ? तो भिक्षु कहता है कि बगल वाले तालाब से नहाकर आ रहा हूँ। जो चीवर उसने पहले पहने हुए था उसको निचोड़कर कन्धे पर टांगे हुए था। तो राजा का साला कहता है – "बदमाश, आज तेरे जैसे भिक्षुक का मुँह देख लिया, आज मैं अपने काम में सफल नहीं हो पाऊँगा।" दूसरी बात कि जिस तालाब को राजा ने कुत्तों और गीदड़ों के पानी पीने के लिए खुदवाया था, तुम उसमें अपनी दुर्गन्धित काया धोकर आ रहे हो। अपनी मैली काया से उस तालब को अपवित्र कर दिए हो।

**D;k bldk fy, fliQ tkfr&0;oLFkk ftEenkj gS fd lcdk dY;k.k pkgus oky eu"; dk lkFk ,slk 0;ogkj fd;k tk jgk gS **

आप ये सोचिए कि जाति–व्यवस्था की जड़ कितनी गहरी है कि एक बौद्ध भिक्षु जो भगवान बुद्ध की करुणा से प्रेरित होकर बौद्ध भिक्षु हुआ और मानव कल्याण के लिए काम कर रहा है। उसको वह कह रहा है कि 'तुम अपनी दुर्गन्धित काया धोकर तालाब को अपवित्र कर दिए' और यह उदाहरण देता है कि 'उस तालाब को राजा ने कुत्तों, गीदड़ों और सभी जानवरों को पानी पिलाने के लिए खुदवाया था।'

इस तरह का चिन्तन तथाकथित 'परम्परागत साहित्य' में है। उसको आप 'हिन्दू लिट्रेचर' कह लीजिए। किस तरह से मानव के खिलाफ दुर्भावना फैलाई गई। राजा का साला उसको मारता भी है और गाली भी देता है। जब उसको मारता है तो बौद्ध भिक्षुक के मुख से एक ही शब्द निकलता है – "आप का कल्याण हो, विश्व का कल्याण हो, आप का कल्याण हो, विश्व का कल्याण हो।" वह यही कहते हुए चला जाता है। लेकिन वो समझता है कि भिक्षुक मुझे गाली दे रहा है। भिक्षुक, 'आप का कल्याण हो, विश्व का कल्याण हो' कहते हुए चला जा रहा है। शूद्रक अपनी ओर से कहते हैं कि भिक्षुक पीछे मुड़कर ऐसे बोलते जा रहा था कि जैसे वो राजा या उसके साले को गाली दे रहा था। अब जो व्यक्ति 'आप का कल्याण हो, और विश्व का कल्याण हो' कहे, उसको गाली समझी जाय, यह बात वह पीछे मुड़कर देखते हुए और कहते हुए जा रहा था। वह मुड़कर पीछे देखते हुए इसलिए भाग रहा था क्योंकि उसे पीट दिया गया था। तो इस तरह की जातीय दुर्भावना न केवल हिन्दू धर्म ग्रन्थों में है, बल्कि 'हिन्दू साहित्य' में भी है। शूद्रक का यह नाटक तीसरी–चौथी शताब्दी में लिखा हुआ है। ये परम्पराएँ साहित्य में लगभग दो हजार बरस पहले शुरू हुईं और नाटक में मुख्य रूप से मिलती हैं। क्योंकि उस समय नाटक लिखने का प्रचलन था। नाटक बड़े पैमाने पर लिखे जाते थे। इसलिए कालिदास ने नाटक लिखा, उपन्यास नहीं लिखा। भास ने भी नाटक ही लिखे। तमाम लोगों ने नाटक लिखे। बड़े–बड़े जो भी साहित्यकार हुए सबने नाटक लिखा। तो नाटक में इस तरह के पात्र गढ़े गए। इस तरह 'जाति–व्यवस्था' का प्रश्न बहुत बड़ा प्रश्न है।

इस सन्दर्भ में जाहिर है कि शिक्षा का सबसे बड़ा महत्त्व है। शिक्षा से समाज भले न मुक्ति पावे, लेकिन जो व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करता है उसकी व्यक्तिगत मुक्ति तो हर तरह से सम्भव है। अगर मैं ही शिक्षित नहीं होता तो जिस स्तर पर सिर्फ सवर्ण ही पहुँच पाते थे, उस स्तर पर तो मैं कभी नहीं पहुँच पाता, यदि शिक्षा नहीं पाया होता तो। इस तरह शिक्षा बराबरी के लिए प्रेरित करती है, बराबरी को स्थापित करती है। शिक्षा का सबसे बड़ा रोल यही है कि वह आदमी को बराबर बनाती है। इसलिए शिक्षा मानव की मुक्ति के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

**vkiu dgk fd f'k{kk efDr fnykrh gA ;gk rk nfyr&fiNMk dk f'k{k.k lLFkkuk e ioo'k l ijtkj rjhd l jkdu dh dkf'k'k gkrh gA rk D;k bl lekt dk f'k{kk ikfIr vkj efDr d fy, vHkh yEck LVxy djuk gkxk **

बहुत लम्बा स्ट्रगल। यह लम्बा स्ट्रगल सिर्फ सामाजिक आन्दोलनों से ही सम्भव हो सकता है। जैसा कि मैंने पहले कहा था – जब अम्बेडकर की गांधी से मुलाकात हुई तो उन्होंने यही कहा कि सामाजिक आन्दोलनों का राजनैतिक आन्दोलन पर वर्चस्व होना चाहिए, तभी समाज बदलेगा। राजनीति से सत्ता हाथ में आएगी, लेकिन समाज ज्यों–का–त्यों रहेगा, अगर सामाजिक आन्दोलन नहीं हुआ तो। कितना सही कहा था अम्बेडकर ने कि जिसका उदाहरण आप वर्तमान समय में देखें कि मायावती चार बार मुख्यमंत्री बनीं,

दलित सत्ता के नाम पर। लेकिन सामाजिक आन्दोलनों को उसने एकदम नष्ट कर दिया। कभी एक भी जुलूस प्रदर्शन नहीं निकालने देती है और न ही कभी जाति–व्यवस्था के खिलाफ बोलने देती है, क्योंकि वह ब्राह्मणों को लेकर सत्ता में आना चाहती थी। उसका नारा था – 'तिलक, तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार'। अब यह बदल कर – 'हाथी नहीं गणेश है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश है' हो गया है। इस तरह की राजनीति को अपनाकर मायावती ने सीधे–सीधे 'वर्ण व्यवस्था' के स्तम्भों को बहुत मजबूत किया है।

**D;k tkrh; vkèkkj ij lEeyu cykuk tkfroknh gkuk g **

हाँ, आप देखिए कि मायावती हर जाति का अलग–अलग सम्मेलन बुलवाती है – ब्राह्मण सम्मेलन, क्षत्रिय सम्मेलन, वैश्य सम्मेलन। दलित जातियों में चमार सम्मेलन अलग, जाटव सम्मेलन अलग, खट्टीक सम्मेलन अलग, पासियों का सम्मेलन अलग। इस तरह से वो सम्मेलन बुलाती है और हर जाति के जातीय गौरव को उत्तेजित करती है कि लोग जातियों में बाँटकर अपनी–अपनी जाति पर गर्व करें, ताकि जाति–व्यवस्था बनी रहे और वो राजनीति करती रहे। इसका साधारण सा मतलब है कि वो जाति विरोधी आन्दोलन चला ही नहीं सकती। जब ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ कहकर ब्राह्मणवादी राजनीति करेगा तो वह दलितों की कैसे खैर सोचेगा ? इस तरह मायावती ने तो दलित राजनीति को एकदम उलटा कर दिया और जातीय स्तम्भों को मजबूत किया। इस प्रकार दलित मुक्ति का आन्दोलन या मैं कहूँ कि जाति भेदभाव खत्म करने का आन्दोलन बहुत पीछे चला गया। सैकड़ों साल पीछे चला गया। अम्बेडकर ने जो सब कुछ किया था, उनके नाम पर उसने उन्हें एकदम मटियामेट कर दिया।

orZeku nfyr jpukvk e nfyr lkfgR;dkj viuh tkrh; vfLerk ij xo djrk gA o & e pekj g] e tkVo g] e Hkxh g] e egkj g] vkfn nfyr tkfr;k crkdj xo djrk gA bl rk yx jgk g fd tkfroknh c< jgk gA yfdu bl lekt dh lkfgfR;d vfHk0;fDr e vFkkr nfyr lkfgR; e ^tkfr* vkj ^o.k* dk lhèkk fojkèk gA

जी हाँ! इससे जातिवाद बढ़ता है। मायावती ने वही किया है। मीटिंगों में जब दलितों का वोट लेना होता है तो बोलती थी – मैं चमार की बेटी हूँ। इस तरह का व्यवहार और सम्बोधन जातिवाद को प्रोत्साहित करता है, बल देता है। नौवीं शताब्दी में कांचीपुरम के धर्मकीर्ति एक बौद्ध दार्शनिक हुए थे। उन्होंने लिखा था कि पहली बात यह है कि जो संसार का कर्ता ईश्वर को मानता है; दूसरी बात कि जो वेदों में विश्वास करता है; तीसरी बात कि जो नदी–नाले में नहाने को 'पाप मुक्ति' समझता है, जैसे कुम्भ में स्नान आदि; चौथी बात कि जो व्यक्ति अपने शरीर को कष्ट देकर तप, पूजा–पाठ करता है, बीना खाये–पीये व्रत रहता है; और, पाँचवीं बात कि जो व्यक्ति अपनी जाति पर गर्व करता है। ये पाँच गुण जिस व्यक्ति में हों, वह दुनिया का, जड़ता का मारा सबसे बड़ा मूर्ख है। उसकी जड़ता और मूर्खता का यह सबसे बड़ा उदाहरण है। ये नौवीं शताब्दी में धर्मकीर्ति ने कहा था। ये जातीय गौरव चाहे जिस रूप में हो। चाहे जिसके भी साथ हो, वह दलित ही क्यों न हो! अगर जाति पर गर्व करता है तो वह महामूर्ख है। उससे बढ़कर कोई बड़ा मूर्ख नहीं। इसका उत्तर मैं इस तरह से देना चाहूँगा।

**^enfg;k* e vku oky ekle d vuklkj [ky & y[kuh] xYyh MMk] dcMMh] gkiM] vkYgk&ikrh vkfn vkj uR; & dgjmvk] èkkchvmvk] pejmvk] xkMbrk ukp] vghjmvk vkfn ykd e vku oky [ky vkj uR; foyIrik; gk x, gA tk FkkM cgr cp g, gA ok gekj fy, Vh-oh- dk ekè;e Hkj cudj jg x, gA D;k bld ihN cktkjokn vkj ifjthokn ftEenkj g **

हाँ! इसमें बाजारवाद, पूँजीवाद तो जिम्मेदार है ही, लेकिन मूल चीज इसके जड़ में है वो ये कि एक जमाना था जब सारी स्मृतियाँ, 'मनुस्मृति', खास करके कलाकारों के खिलाफ इतना जहर उगल रही थी कि जिसका कोई हद–हिसाब नहीं। इसका कारण ये था कि सारी कलाएँ, चाहे वो नृत्य कला हो, लोक नाट्य कला हो, लोक संगीत हो, सब की सब कलाएँ दलितों–आदिवासियों के बीच सीमित थीं। बाद में जब उन्होंने देखा कि इसके इस्तेमाल से धन सम्पत्ति कमाई जा सकती है। तो उसको तथाकथित शास्त्रीय रूप देकर उसका एक अलग रूप दे दिया गया। इस तरह उसे हड़प लिया गया। जैसे, मनोज तिवारी हैं न यू.पी. बिहार में। इस तरह के लोग अब पैदा हो रहे हैं। उनको कहा जा रहा है कि ये हमारी प्राचीन संस्कृति के सबसे बड़े रक्षक हैं। अरे ! ये क्या है ? जो पैसा लेकर, उसको सबसे भोंडा रूप देकर पेश कर रहे हो। उसमें सेक्स वगैरह को शामिल करके ऐसे गीतों में वो 'पापुलरटी' लेते हैं। सच पूछिए तो, ये संस्कृति–भंजक लोग हैं। असली जो लोग हैं लोक–संस्कृति या लोक–कला को बनाने–बचाने वाले तो वही दलित और आदिवासी हैं।

**D;k dykvk d lt[d vkj okgd nfyr] vkfnoklh vkj fiNM lekt d ykx jg g **

दलित, आदिवासी और पिछड़े समाज के लोग ही कलाओं के सर्जक और वाहक रहे हैं। आप देखिए, दलितों और

आदिवासियों में वाद्ययंत्र की कला थी। यह कला और किसी में नहीं थी। आज पंडित लोग खूब मन से बैठकर घड़ा बजा रहे हैं, तबला बजा रहे हैं, मृदंग बजा रहे हैं। ये सारी चीजें तो दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों की थीं। उच्च जातियों या ब्राह्मणों में एक परम्परा थी, जो अब खत्म हो गई है कि जब शादी होती थी, उस समय ब्राह्मणी एक बावली से मिट्टी लेने जाती थी। जो चिकनी मिट्टी होती थी। जिसकी शादी हो रही हो, उसको नहलाया जाता था। साबुन वगैरह का उस समय प्रचलन नहीं था। इसमें पचासों औरतें गीत गाते हुए बावली तक जाती थीं। इस गीत के बीच एक दलित लड़का ढोल बजाते हुए जाता था। यह काम मैंने भी किया है। (सर पूरी तरह से हँसने लगे) बाई द वे 'मुर्दहिया' में लिखना भूल गया। (साथ ही मैं ही हँस पड़ा)। लेकिन किसी न किसी रूप में मुर्दहिया के अगले भाग में मैंने इसका जिक्र किया है। तो मैंने खुद बहुत ढोल बजाया है। इस तरह ये वाद्ययंत्र ढोल वगैरह प्राचीन काल से ही दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों का वाद्य रहा है।

अब सितार को ही देखिए, आदिवासी लोग एक हंडिया पर चमड़ा काटकर लगा देते थे। उसी को बजाते थे। उससे टन्न–टन्न करके आवाज निकलती थी। उसी को बाद में सितार का रूप दिया गया। और ये तो माना ही जाता है कि सितार और तबले का नए रूप में मिर्जा अमीर खुसरों ने किया। अमीर खुसरो मुसलमान थे। फिर इंडिया में तबला कहाँ था ? सितार कहाँ था ? जाहिर है कि सवर्णों का यह सब वाद्ययंत्र नहीं था। अमीर खुसरों ने ढोलक को ही काटकर उसे दो हिस्सों में बाँट कर तबला बनाया। अमीर खुसरो तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में थे। यानी तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी से पहले सितार और तबला ब्राह्मणों का वाद्ययंत्र नहीं था।

यह वाद्य मुख्यतः दलितों–आदिवासियों का था, जिसका अमीर खुसरो ने दूसरे तरह से ईजाद किया। यह भी साबित करता है। बहुत सारे तथाकथित हिन्दू इतिहासकार दावा करते हैं कि भारतीय संस्कृति सबसे पुरानी है। ये शास्त्रीय गायन, शास्त्रीय नृत्य, शास्त्रीय वादन हमारी संस्कृति का मूल है, जो हमने बनाया है। ये हमारी महान संस्कृति की अद्भूत देन है और न जाने क्या–क्या ? मतलब फ्राड तरीके से पेश करते हैं। जबकि उनके साथ कभी नहीं था। ये सब दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों की चीजें थीं।

**D;k lo.kZ lekt dykvksa dk fojks/kh jgk gS **

आप देखिए कि 'मनुस्मृति' में तो यहाँ तक वर्णन है कि किसी कलाकार का 'मृत्युभोज' हो तो उसका भी बहिष्कार करना चाहिए, उसमें जाना नहीं चाहिए। मनु 'कलाकारों' को पापी बताते हैं। ऐसा माहौल था। तो ये कैसे कला–संगीत के संरक्षक हो सकते थे ? इसके असली रक्षक तो दलित, आदिवासी और पिछड़ी जातियों के लोग थे। उनका भी जीवन ऑल मोस्ट दलितों की ही रतह था। उनके बीच भी कला, संगीत और नृत्य आदि का प्रचलन था। उसी में चमरउआ, धोबिअउआ, कहरउआ, अहीरउआ बिरहा गायन, बहुत सारा कुछ प्रचलित था, जिसे उस कटेगरी के लोगों ने ही ईजाद किया था। यह नया ईजाद नहीं था। यह सदियों पुराना है, बहुत प्राचीन है। तो कला, संगीत और संस्कृति के असली रक्षक तो इन्हीं वर्गों के लोग हैं, न कि सवर्ण वर्ग के लोग। उनमें कोई कला नहीं थी। सवर्ण इसके भयंकर विरोधी थे।

बाद में जैसा कि आपने कहा कि यह पूँजीवाद की देन है, तो उसका धन कमाने का बहुत बड़ा हथियार बनाकर इस्तेमाल किया। इसमें भी उसका एक इंट्रेस्टिंग पक्ष है कि इन लोक कलाओं को सवर्ण लोगों ने हड़पकर गुरुकुल का दर्जा दे दिया। गुरुकुल का दर्जा, मतलब यह कि गुरुकुल कभी भी ज्ञान को सब लोगों तक आने नहीं देता है। एक ब्राह्मण कलाकार दूसरे ब्राह्मण को सिखाएगा। किसी और को सीखने नहीं देगा। आम जनता के बीच फैलने नहीं देगा। बल्कि गुरुकुल शिक्षा के माध्यम से वो अपने शिष्यों को सिखाएगा। उसका शिष्य अपने शिष्यों को सिखाएगा। उसका शिष्य अपने अलग–अलग शिष्यों को सिखाएगा। इस तरह से ये गुरु और शिष्य की जो परम्परा है, यह कला और संस्कृति को फैलने से रोकने के लिए इन लोगों ने स्थापित किया। ताकि कुछ ही लोग इसे जान पायें और खूब वाहवाही लूटें, पैसा कमाएँ।

जबकि जो लोक कलाएँ थीं, उनको लोक कलाकार न सिर्फ अपने लिए बनाता था, बल्कि हजारों की भीड़ में कला को प्रदर्शित भी करता था और लोगों को प्रेरित भी करता था कि ऐसा वे लोग भी बनाएँ, बजाएँ, और नाचें। यह पूरी तरह जनतांत्रिक था। उस काल–संस्कृति के ट्रेडीसन को यह गुरुकुल शिष्य की परम्परा में देकर उन लोगों ने एकदम व्यक्तिगत सम्पत्ति बनाया। इस तरह से यह गुरुकुल प्रणाली की नीति आज भी चली आ रही है और बड़े प्यार से सारी मीडिया तारीफ करती है, कि गुरु–शिष्य परम्परा में ये गायन हुआ, ये नृत्य हुआ, ऐसा हुआ–वैसा हुआ। मीडिया खूब सराहती है। लेकिन सच्च क्या है ?, उसे कहने से मीडिया कतराती है। तो नए तरीके से 'कला–संस्कृति' को समझने की जरूरत है।

bl vkèkkj ij dgk tk ldrk gS fd ^eèkqcuh dyk iQkbVx* Hkh nfyrksa] fiNMksa vkSj vkfnoklh;ksa dh gh nu gS] ftlus vkt lo.kZ lekt us ^gkbZ tsd* dj fy;k gSA

हाँ! हाँ! बिल्कुल, सारी चीजें हाई–जैक हो रही हैं। अब वो जो दलित पेंटिंग करते थे, उसे ये लोग अपना कहकर खूब प्रचारित कर रहे हैं। जिस पेंटिंग का मैंने 'मुर्दहिया' में जिक्र किया है कि शादी–विवाहों में कोहबर राईटिंग के रूप में मैंने उल्लेख किया है, उसमें दीवारों पर केला बना दिया जाता था; शेर बना दिया जाता था; गाय, हाथी बना दी जाती थी; कमल का फूल आदि। इस तरह बहुत सारी चीजें बनाई जाती थीं। ये पेंटिंगें गेरू के घोल से दीवारों पर बनाई जाती थीं। मैं खुद कोहबर पेंटिंग में बहुत एक्सपर्ट था। (हँसते हुए ...) गाँव–घर में जितनी शादियाँ होती थीं, उनमें मैं ही पेंटिंग बनाता था, जबकि मैं तब प्राईमरी स्कूल में ही पढ़ता था। ये कलाएँ सवर्णों के यहाँ नहीं थीं। उनकी शादियों में कोहबर कला नहीं बनती थी। यह दलितों और आदिवासियों की शादियों में ही बनाई जाती थी।

इस तरह से बाद में, जैसे स्वामिनाथन नाम के एक बहुत बड़े पेंटर हुए थे। कोई 15–20 साल पहले उनकी मृत्यु हो गई। मैं उनसे कई बार मिला था। बैठकर गप्प–शप्प होता रहता था। वो कोहबर कला और पेंटिंग के बहुत बड़े एक्सपर्ट माने गए। स्वामिनाथन साऊथ इंडियन ब्राह्मण थे। बहुत अच्छे व्यक्ति थे। बहुत ही प्रतिभाशाली थे। वे पेंटिंग कला और अन्य कलाओं को दलितों, आदिवासियों की देन स्वीकारते थे। वे बहुत बड़े कलाकार थे। अपनी पेंटिंग से खूब नाम और पैसा कमाया। उनकी पेंटिंग बहुत महँगी बिकती थी। जिस तरह की पेंटिंग वो बनाते थे, उस तरह की पेंटिंग की बहुत बड़ी परम्परा राजस्थान के दलितों और आदिवासियों के बीच प्रचलित थी।

**vkt nfu;k esa tk lokPp dyk,¡ fo|eku gS] mldk lEcUèk vkj okgd ;gh vkfnokfl;ksa vkj nfyr Fks **

दुनिया के कई देशों में ऐसी कलाएँ प्रचलित हैं, जो हजारों हजार साल पुरानी हैं। चार–चार, पाँच–पाँच हजार साल पुराने पत्थरों पर ये कलाएँ मिली हैं। ये कौन थे ? ये वही दलित, आदिवासी थे, जो जंगलों में रहते थे। उनके जीवन में जो कुछ होता था, उसका वे चित्रण करते थे। मूलतः वे शिकार करते थे। वही उनका भोजन था। तो इन पत्थरों पर शिकार की पूरी प्रक्रिया की कलाकारी करते थे, पेंटिंग करते थे; जिसमें आदमी को भाला लेकर जानवरों को दौड़ते और मारते हुए दिया गया है। उसको 'यूनाइटेड नेशन' ने दुनिया की बहुत बड़ी धरोहर माना है, दुनिया की पहली पेंटिंग कहता है, जो मूलतः आदिवासियों की देन है।

आगे चलकर सभ्याता के बढ़ने के साथ ही साथ, दलितों और आदिवासियों ने उसी क्रम में मूर्तियाँ गढ़ना शुरू किया। सबसे पहले उन लोगों ने बुद्ध की मूर्तियाँ गढ़ना शुरू किया और इसके बाद यह परम्परा बहुत बाद में हिन्दुओं में आई, बाद की परम्परा है। राम आदि की मूर्तियाँ 10वीं शताब्दी के बाद गढ़ी गईं। मन्दिरों में मूर्तियों के प्रवेश का साक्ष्य सबसे पहले दक्षिण भारत के मन्दिरों में दिखाई देता है। ये तो ब्राह्मण हिन्दू इतिहासकार हैं जो ये कहते हैं कि 10वीं शताब्दी के बाद से मूर्तियों का गढ़ना दक्षिण भारत से आया। लेकिन ध्यान दें कि आज भी ऑर्किओलाजिकल विभाग में जो खुदाई होती है तो सब जगह चारों तरफ सिर्फ बुद्ध की टूटी–फूटी, छोटी–छोटी मूर्तियाँ मिलती हैं। वर्तमान युग में सान्याल और उन जैसे और लोग हैं जो बड़ी–बड़ी मूर्तियाँ बनाते हैं। गांधी की, नेहरू की, आदि लोगों की। उनकी बनाई एक–एक मूर्तियाँ तीस–तीस लाख में बिकती हैं। यही मूर्तियाँ चौराहों पर खड़ी दिखती हैं। इस तरह मूर्ति कला दलितों–आदिवासियों की देन है।

आज भी आप महाबलिपुरम् में जाकर देखिए तो, महाबलिपुरम् में दो तीन मन्दिर हैं। वे सब मन्दिर पत्थरों में ही तरास कर बनाए गए हैं। उसमें अलग से कोई चीज नहीं मिलायी गई है। इसके लिए वह मन्दिर प्रसिद्ध है। वहाँ एक बड़ा–सा मुहल्ला है, जिस मुहल्ले में लोग सैकड़ों की संख्या में चारों तरफ बैठकर पाषाण मूर्तियाँ गढ़ते हैं। ये लोग लगातार दिन–रात मूर्तियाँ गढ़ते हैं। सोविनियर के रूप में हिन्दू देवी–देवता की, बुद्ध की, और लोगों की भी मूर्तियाँ गढ़ते हैं। ये वही दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग के लोग हैं। लेकिन लोगों के बीच जो मूर्ति कलाएँ फैली हुई हैं, उससे दलित–आदिवासी आज भी बाहर हैं। वहाँ ब्राह्मण बैठकर मूर्तियाँ नहीं गढ़ते हैं। ब्राह्मण तो एयर कंडीशन में बैठकर उन मूर्तियों का रेट लगाते हैं। उन मूर्तियों को खरीदता बेचता है। इस तरह से महाबलिपुरम में लोक कला का दृश्य देखने को मिलता है। इस तरह कला के हर क्षेत्र को ओरिजीन मूलतः आदिवासियों ने किया। अभी सभ्यता उस तरह से नहीं आई थी। उस समय इन सब कलाओं का विकास आदिवासियों ने शुरू किया था।

^enfg;k* gk ;k ^ejk cpiu ejs dUèkk ij* ;k vU; nfyr vkRedFkk,¡] mu lc dk i<u d ckn lkQ&lkQ yxrk gS fd 'kk"k.kdkjh ckã.kokn dN ihN gVk gS] rk mudh txg ^fiNM ox* l u, 'kk"k.kdkjh ykx lkeu vk, gSa] tls ^enfg;k* e ^oek th* ;k ^jkepju ;kno* vkj ^ejk cpiu ejs dUèkk ij* e ^ipeiky flag ;kno] efgiky flag ;kno*A rk bl vkèkkj ij D;k ge dg ldrs gS fd vc ckã.kokn u tkrh; vkj o.kZeh eY;k d

**opLo dk cpk;k j[kus d fy, u;k i;kx fd;k g **

हाँ! ये तो है ही। जाति–व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था से ही निकली है। इसका कारण यह है कि जाति–व्यवस्था ने हर आदमी को एक हायरारकी वाली सोच प्रचार किया है कि मैं तुमसे बड़ा हूँ या दूसरे से बड़ा हूँ। यह चीज सिपर्फ ब्राह्मणों में ही नहीं है। यह पिछड़ों में भी है। दलितों में भी है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दलित बहुत ही गौरव भाव के साथ अपने को बड़ा मानते हैं, दूसरे दलितों की अपेक्षा। तो जाति–व्यवस्था ने यह विचार पैदा ही नहीं किया है, बल्कि दलितों और पिछड़ों के दिमाग में भरा भी है। इसीलिए पिछड़ी जातियों का भी एक हिस्सा बहुत ज्यादा दलित विरोधी हो गया और खुलेआम दलित जातियों के खिलाफ अभियान चलाता रहता है। अभी हाल ही में नौकरियों में 'प्रमोशन में रिजर्वेशन' की बात आई तो मुलायम सिंह यादव और उनकी 'समाजवादी पार्टी' ने सीधा विरोध किया। यद्यपि कि दलितों के सामाजिक विकास के लिए जो नीतियाँ अपनायी गई हैं, उसके प्रबल विरोधी 'संघ परिवार' के लोग हैं, बीजेपी के लोग हैं। लेकिन ये बड़े हैरत में देखने को मिला कि बीजेपी सड़कों पर नहीं आई, दलितों के पदोन्नति सम्बन्धित विधेयक को लेकर; बल्कि मुलायम सिंह की पार्टी आई, संसद से लेकर सड़क तक। तो यह बड़ी निगेटिव ट्रेंडेंसी पिछड़ी जातियों के कुछ लोगों में आई है। मैं सभी पिछड़ों को ऐसा नहीं मानता हूँ, कुछ ही लोग ऐसे हैं। जो व्यक्तिगत राजनीति है, इसके चलते ये सब ऐसा कर रहे हैं। उसके लिए भी पूर्णतः जिम्मेदार जाति–व्यवस्था ही है। मैं इसके लिए कुछ व्यक्तियों या जातियों को उसका जिम्मेदार नहीं मानता हूँ, बल्कि जाति–व्यवस्था ही इसके उपज की असली जिम्मेदार है। अगर उसका इतिहास देखें तो जब मायावती या मुलायम का शुरू में समझौता हुआ था, उस समय दोनों मिलकर सत्ता में आ गए। उस समय भारतीय मीडिया लिखने लगी थी कि यह गठबन्धन देखने लायक है। भविष्य में इनका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा और वो समय आएगा जब अगड़ी जातियाँ सत्ता से एकदम बाहर हो जाएँगी। इस तरह की बात लोग करने लगे थे, लेकिन जिस तरह से मुलायम ने व्यवहार किया या जिस तरह से कांशीराम या मायावती ने व्यवहार किया, जिसके लिए कोई एक नहीं, ये दोनों जिम्मेदार हैं। और आगे चलकर सरकार गिर गई। बीएसपी चली गई हिन्दुत्ववादी पार्टी के साथ और गठबन्धन करके सरकार बना ली। ये समाज के लिए बहुत ही दुखद रहा। जिसका परिणाम ये हुआ कि ये गठबन्धन जैसे ही टूटा, इसके बाद दलितों और पिछड़ों के बीच एक तरह से दुश्मनी शुरू हो गई। वह दुश्मनी इस हद तक आज के दौर में पहुँच गई है कि पिछड़ी जातियों का दलित विरोध बहुत मजबूत हो गया है। इतिहास में कभी–कभी ऐसा होता है, लेकिन मैं इसे कोई परमानेंट फीचर नहीं मानता, ये टेम्पेरेयरी दौर है। कभी न कभी दोनों वर्गों के लोग सोचेंगे और एक दिन एक मंच पर आएँगे। मैं ऐसी आशा करता हूँ।

**^enfg;k* dk jktuhfrd n`'kdky ug: dk n'kdky gA bl dky unfyrk dh lkekftd vkj jktuhfrd fLFkfr e cnyko dk fy, fdl rjg dh Hkkfedk vnk fd;k **

नेहरू के समय और उसके बाद से तो दलितों की सामाजिक स्थिति बहुत मजबूत हुई। साथ ही, राजनीतिक स्थिति भी मजबूत हुई। इसका कारण ये था कि जो जनतांत्रिक प्रणाली नेहरू के नेतृत्व में भारत में आई, वह बहुत महत्वपूर्ण थी। वास्तव में नेहरू की यह भारत को सबसे बड़ी देन है। अम्बेडकर की देन तो संविधान है। लोकतंत्रीय व्यवस्था में ही संविधान का आधार रखा गया। सबसे बड़ी बात यह कि दलितों की मुक्ति का आधार भी संविधन में रखा गया। यह आधार 'आरक्षण' है। अम्बेडकर की बहुत जल्दी मृत्यु हो गई। आजादी के बाद 1956 में ही अम्बेडकर के मर जाने के कारण वो बहुत कुछ कर नहीं पाये। वो अगर दस साल और जिन्दा रहे होते तो भारत का सामाजिक स्वरूप काफी बदला हुआ होता, विशेष रूप से दलितों, आदिवासियों और पिछड़ों का सामाजिक स्तर।

अम्बेडकर तो पिछड़े वर्गों का भी आरक्षण चाहते थे। शुरू में ही जब संविधान को बनाया जा रहा था, लेकिन पिछड़े वर्ग के नेता उस समय हीन भावना से ग्रसित थे। वो सोचते थे कि दलितों की तरह अगर हम भी रिजर्वेशन लेते हैं तो हम भी दलितों के बराबर चले जाएँगे और सवर्ण जातियों के लोग हमारे साथ भी उसी तरह का भेदभाव करने लगेंगे। ये मानसिक भाव संविधान सभा के पिछड़े वर्ग के नेताओं में काम कर रहा था। अम्बेडकर से पिछड़े वर्ग के आरक्षण पर लोहिया से बात होती रहती थी। इस वजह से पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए शुरू में आरक्षण नहीं मिल पाया। बाद में 'मंडल कमीशन' ने पिछड़ों के लिए आरक्षण का प्रावधन किया। यह एक सच्चाई है कि दलितों का आरक्षण नहीं होता तो पिछड़ी जातियों को आरक्षण का कोई सवाल ही नहीं उठता। चाहे मंडल साहब कितने ही अनुमोदन क्यों न देते। अनुमोदन की तो बात ही छोड़िए, मंडल कमीशन की बात कोई सोचता ही नहीं। में यह कहना चाहूँगा कि दलित इस मायने में पिछड़ों के भी मुक्तिदाता हैं कि उनके अनुमोदन के मॉडल पर ही पिछड़ों का आरक्षण आया और देखिए कि मुक्ति का अभियान शुरू हो गया है। लोग बड़ी–बड़ी नौकरियों में जा रहे हैं। अब लोग आईएएस, आईपीएस बन रहे हैं। जिसमें इसकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। मैं इसे बहुत ही सकारात्मक विकास मानता हूँ। तो नेहरू के बाद ये चीजें आई। मेरे कहने का मतलब है कि नेहरू ने जो जनतांत्रिक व्यवस्था स्थापित किया

था, अम्बेडकर के सहयोग से, उसी के आधार पर ये विकास सामने आया। इसका प्रभाव समाज के बदलने में बहुत महत्वपूर्ण रहा है। बहुत अधिक समाज बदला है, लेकिन फिर वही मूल समस्या आती है कि सामाजिक स्तर पर, आर्थिक स्तर पर आज भी ये वर्ग बहुत पिछड़े हुए हैं। लेकिन मूल समस्या हल करना बाकी है और यह हल तभी होगा जब जातिवादी सोच बदलेगी और जातिवादी सोच तभी बदलेगी जब जाति विरोधी आन्दोलन होंगे। इसलिए मैं बार–बार हर जगह बोलता और लिखता रहता हूँ कि समाज को बदलने के लिए सामाजिक आन्दोलन की बहुत जरूरत है। जो युक्ति बाबा साहब अम्बेडकर ने गांधी को बताया था कि सामाजिक आन्दोलनों का वर्चस्व राजनीतिक आन्दोलनों पर होना चाहिए, तभी समाज बदलेगा। जो आज के समय में आप देख सकते हैं कि कितना सच है। जैसे, मायावती राजनीतिक माध्यम से तो सत्ता में आ गई, लेकिन कोई सामाजिक परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि और उल्टी दिशा में सामाजिक परिवर्तन को ले गई। जातिवाद को उसने बहुत ज्यादा फैलाया और मजबूत किया। इसलिए सामाजिक आन्दोलन की बहुत जरूरत है और सामाजिक आन्दोलन नहीं होंगे तो देश फासिज्म की ओर बढ़ेगा, जिसका नेतृत्व आरएसएस और बीजेपी के लोग करेंगे। एक बार ये फासिस्ट पार्टियाँ सत्ता में आ गईं तो फिर आप डेमोक्रेसी की बात ही छोड़ दीजिए। खूब साम्प्रदायिक दंगा करवाएँगी, जगह–जगह धर्म की राजनीति करेंगी। मस्जिद तोड़कर मन्दिर बनवाएँगी। देखते–देखते बाबरी मस्जिद को तोड़ ही दिया। आरएसएस और अन्य फासिस्ट ताकतों ने बाबरी मस्जिद तोड़ने के बाद तीस हजार ऐसी मस्जिदों की लम्बी लिस्ट तैयार किया है, जिसे अवसर पाते ही तोड़ने की तैयारी है। यह काम मुख्यतः आरएसएस की जनरल बॉडी ने पूरे पते के साथ तैयार कर रखा है। इस तरह अगर जनतंत्र खत्म हो गया तो यह समाज बहुत खतरनाक दिशा में जाएगा।

अगर आप ध्यान देखें तो जब–जब भाजपा के लोग विपक्ष में रहते हैं, तब–तब जनतंत्र की बात करते हैं। लेकिन उसमें भी उनकी फासिज्म की मानसिकता देखिए जो उनके लोकतांत्रिक विरोध के तरीके में दिखती है कि पिछले नौ सालों से वे लोग बाहर हैं। एक दिन भी बीजेपी सही तरीके से संसद को नहीं चलने देती है। ये फासिस्ट तरीका है और फासिज्म है। तो बहुत खतरनाक स्थिति में चला जाएगा भारत, अगर ये लोग केन्द्र में आते हैं। इसीलिए हमें हर हाल में विकास के जनतांत्रिक मॉडल को बनाए रखना है।

vki ^eqfg;k* dk lkekftd&lkaLÑfrd egRo ij D;k dguk pkgx

'मुर्दहिया' के सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व पर मैं क्या कहूँ ? क्योंकि मुर्दहिया को मैंने ही लिखा है। उसको तो दूसरे लोग ही जज करेंगे। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि जो संस्कृति आज दलित–आदिवासियों के बीच से विलुप्त हो गई है, जिसके सर्जक और वाहक दलित रहे हैं। उसका जिक्र मैंने मुर्दहिया में जगह–जगह किया है। इस समाज के लोक कलाओं का, उसके गायन का, यहाँ तक कि मार्शल आर्ट का, जो 'बाना बनैठी' भाँजते थे, ये सब लोक कलाएँ आजकल लुप्त होती जा रही हैं। मैंने तो एक तरह से उन लुप्त कलाओं या संस्कृतियों का मुर्दहिया के माध्यम से 'रिवाईवल' किया है। यानी फिर से उनके ऐतिहासिक–सामाजिक महत्व को बताया है कि सामज में जो चीजें थीं, अब वो चीजें देखने को नहीं मिलती हैं। मैं इसी मायने में उसका सामाजिक–सांस्कृतिक महत्व देखता हूँ।

nfyr vkRedFkk,a ftl rjg dk vkØk'k vkj fonkg dk lkFk vkrk gS] mruk vkØk'k dk lkFk enfg;k ugh vkrk gSA viuk n%[k nnZ dk cgqr èkhes&èkhes dgrh gSA cMcdyiu ls cprk gSA rks D;k ;g dg ldrs gSa fd enfg;k efDr dk dkbZ u;k jkLrk l>krk gS

मैं यह तो नहीं कह सकता, क्योंकि वह मेरी आत्मकथा है। मैं इतना आत्म गौरव लेना भी नहीं चाहता, लेकिन एक चीज मैं समझता हूँ कि क्रोध से कभी समाज नहीं बदलता है, जैसा कि बुद्ध ने ही कहा है कि क्रोध खौलते हुए पानी की तरह है, जिसमें आपका चेहरा नहीं दिखाई देता है। वहीं पानी शान्त रहता है, तो आपका चेहरा साफ–साफ दिखाई देता है। तो खौलते हुए पानी से शान्त पानी बेहतर है, न भाई। इसीलिए शान्तिपूर्ण और संयत ढंग से जो मैंने बात कही है, मैं समझता हूँ क्रोध वाली बात से ज्यादा गम्भीर और ज्यादा असरदार है। इसीलिए लोग मुर्दहिया के समर्थन में उतरे हैं वो चाहे ब्राह्मण हों, क्षत्रि हों, सभी लोगों ने सराहा है। इसका मतलब है मुर्दहिया ने निश्चय ही समाज को सही दिशा दिया है। मुर्दहिया पढ़ते हुए बहुत से लोग रोये हैं। कभी–कभी तो लोग फोन करते हुए रो पड़ते हैं। उसमें महिलाएँ सबसे ज्यादा हैं। सारी सवर्ण महिलाएँ हैं। उषा अमात नाम की केरल की एक लड़की है जो करुणाकूलम में मुर्दहिया पर एमफिल कर रही है। उसने फोन किया और बताया कि पाँच बार मैंने मुर्दहिया पढ़ी। जब–जब पढ़ी रोती रही। मुझसे बातें करते हुए फोन पर ही रोने लगी। ऐसे ही कई लोगों ने फोन किया। बनारस से एक महिला ने फोन किया। वह आर्य महिला डिग्री कॉलेज में पढ़ाती हैं। वह फोन की और फोन पर ही रोने लगीं। जब कि वह ब्राह्मणी महिला हैं। इसी तरह लोग महाराष्ट्र से फोन करते हैं। तमाम जगहों से लोग फोन करते हैं। मतलब सभी लोग इसमें शामिल हैं। तो उस समय लगता है कि मुर्दहिया की दिशा सही है और समाज को सही दिशा दे रही है।

jkbV V fMxuhQkbM MFk

योगेश भटनागर

पापा को तीन दिन से साँस लेने में तकलीफ हो रही है। आज तो हाल यह है कि साँस लिया ही नहीं जा रहा है। न लेटे, न खड़े, न बैठे, न सीधी करवट, न उल्टी करवट, न सीधे साँस आ रहा है। हमने फौरन अपने कज़ीन कपिल को बुलाया। वह टी.बी. का स्पेशलिस्ट है और बीस बरस से एक सरकारी अस्पताल में काफी ऊँची पोस्ट पर काम कर रहा है। कपिल हमारे खानदान का पहला डॉक्टर था जिसने यूपीएससी का इम्तिहान पास कर दिल्ली सरकार के अस्पताल में काम करना शुरू किया था। इन बीस सालों में उसने एक बहुत ही सुलझे हुए डॉक्टर का नाम बताया है। सब कहते हैं कि उसके हाथ में शफा है। कपिल ने आते ही पापा की जाँच की और फौरन अस्पताल ले जाने के लिये कहा। हमारा घर पाँचवीं मंजिल पर डी.डी.ए. के एस.एफ.एस. फ्लैट्स में है। पापा के लिये खुद सीढ़ियाँ उतरना नामुमकिन था। उन्हें एक हत्थों वाली कुर्सी में बैठाया और हम चारों, मतलब मैं मेरा बड़ा भाई, कपिल और एक पडौसी के लड़के के साथ उन्हें नीचे लाये, जैसे–तैसे कार में बैठाया और पास के अस्पताल फोर्टिस में ले आये। इमरजेन्सी में जाते ही उन्हें फौरन ऑक्सिज़न लगा दी गयी। कपिल के बैचमेट और हमारे बरसों से रहे पड़ौसी सलीम चाचा के बेटे इन्टर्नल मेडिसन के स्पेशलिस्ट ज़ाहिद (हम ज़ाहिद को डॉ. ज़ाहिद कहकर नहीं पुकारते थे। पापा कहते थे कि डॉ. ज़ाहिद कहने में फार्मल होने की बू आती है) ने फौरन एक्सरे कराया और बताया कि पापा के फेफड़ों में पानी भर गया है। पानी को फौरन निकाला गया। करीब पौने दो लीटर पानी निकाला तब जाकर पापा साँस लेने लायक हुए। एहतियात के तौर पर ऑक्सिज़न फिर लगा दी और सेलाइन भी चढ़ाना शुरू कर दिया। पानी को जाँच के लिये भेज दिया गया और अगले दिन जब रिपोर्ट आयी तो ज़ाहिद ने बताया कि कैन्सर हो सकता है, फौरन उनकी डिटेलड जाँच करवानी चाहिए। कैन्सर का नाम सुनते ही हम सभी सकते में आ गये। मुझे याद आया कि चाची को कुछ साल पहले ब्रेस्ट कैन्सर हुआ था। उनकी एक ब्रेस्ट निकालने के बाद भी उनको तीन बार रिलेप्स हुआ था और हर बार वही कीमोथिरेपी की सायकिल और रेडिऐशन के दौर जो एक बार डेढ़ साल, दूसरी बार आठ महीने और तीसरी बार छह महीने चले। हैरल आफ तो साइंस कि चाची अब साठ साल की हैं और ठीक हैं। मुझे लगा कि पापा भी ठीक हो जायेंगे। फिर याद आया कि पापा के दोस्त की पत्नी शालिनी तो आठ महीने में ही चल बसी थी, मेरे दोस्त के पिता आदर्श को लंग कैन्सर था वह तो कुल पाँच महीने ही जिये (कैन्सर की लास्ट स्टेज में पता लगा था)। फिर याद आये भाभी के मामा जिनकी कमर में कैन्सर हो गया था। उनका इलाज डेढ़ साल चला था और डॉक्टरों ने कहा था कि अब वह बिल्कुल ठीक हैं पर तीन महीने बाद जब चैकअप के लिये गये तो पता लगा कि कैन्सर ब्रेन में चला गया है और काफी फैल चुका है। उनके मुँह के दाँयीं तरफ फालिज पड़ गया था, जबान टेढी हो गयी थी और स्पीच काफी ख़राब हो गयी थी। सिवाय भाँय–भाँय के और कुछ समझ मं नहीं आता था। जब उन्हें यह एहसास हुआ कि उनकी बात कोई समझ ही नहीं पा रहा है तो उस दिन से उनकी आँखों में हताशा और मजबूरी नज़र आने लगी। वे अक्सर सबको टुकर–टुकर देखा करते और सारा सारा दिन उनकी आँखों में से आँसू बहा करते। सारा परिवार लाचार था। तिलतिल मरता हुए देखने के अलावा कुछ नहीं कर पा रहा था और आखिर तीन महीने एक जिन्दा लाश की तरह जीकर वे चल बसे। मुझे लगा कि हमारी नियति भी शायद ऐसी ही है। पापा शायद दो एक साल ही ज़िंदा रह पायेंगे, इस ख़्याल ने मुझे परेशान कर दिया। कपिल मम्मी को समझा रहा था कि आजकल साइंस बहुत आगे चली गयी है। और मुमकिन है कि पापा बिल्कुल ठीक हो जायें। सबसे पहले यह जानना ज़रूरी है कि कौन–सा कैन्सर है और किस स्टेज में है। ज़ाहिद भी कह रहा था आन्टी, मुझे लगता है यह फर्स्ट स्टेज ही है। मम्मी थीं कि शून्य में देखे जा रही थीं। मानो कुछ सुन ही नहीं रही थीं। पता नहीं उनके मन में कैसी उथल–पुथल चल रही थी।

हम फौरन पापा को मेदान्त (गुड़गाँव का एक अस्पताल) में ले आयें पापा अब साँस तो ठीक से ले पा रहे थे पर ज़ाहिद ने कहा कि पानी दोबारा नहीं भरना चाहिये वर्ना मुश्किल हो जायेगी। पापा ने सुन लिया, पूछा क्या बात है ? डॉक्टर क्या कह रहे हैं ? ज़ाहिद ने कहा कि कुछ टेस्ट करवाने हैं उसके बाद ही तय कर पायेंगे। तभी सर्जन आया और उन्हें कहा कि आपको बायोपसी के लिये ओ.टी. में ले जाना होगा। पापा ने फौरन हम सबको देखा मानो कह रहे थे कि मैं समझ गया कि क्या मर्ज़ है। उनकी आँखों में ताज्जुब और हैरत साफ दिखाई पड़ रही थी। उन्होंने कहा कि फौरन नवीन को बुलाओ। नवीन हमारे चाचा हैं। यूँ तो

योगेश भटनागर, जेएनयू से रूसी साहित्य के प्रोफेसर के पद से अवकाश प्राप्त।

पापा समेत हमारे दो ताऊ जी और एक चाचा हैं पर उन्हें नवीन चाचा से बहुत लगाव है। पिछले दस साल चाची की बीमारी में पापा उनके साथ एक चट्टान बनकर खड़े रहे और उन्हें कभी डिप्रेशन में नहीं जाने दिया। जब भी चाचा थोड़ा उदास होते तो वे उनके गाईड फिलॉसफर और फ्रेंड बन जाते थे। हमारे ताऊओं से इतना लगाव न होने की वजह थी कि वे दोनों बाहर रहते थे और उनसे मुलाकातें साल दो साल में थोड़े दिनों के लिये ही हुआ करती थीं। हम लोग भी अपने चचेरे भाई बहनों से ज़्यादा प्यार करते थे। हमउम्र जो थे। नवीन चाचा आते ही पापा से लिपट गये। पापा ने हँसते हुए कहा कि अभी तक कुछ पता नहीं लगा है इसलिये घबराओ मत। पर पापा की आखें चाचा से कह रही थीं कि अब तुम्हें भाभी और मेरे बच्चों के गाईड, फिलॉसफर और फ्रेन्ड बनने का वक्त आ गया है। चाचा की आँखें कह रही थीं कि या खुदा इतना जुल्म मत कर। मैं नहीं निभा पाऊँगा यह भूमिका। पापा को ओ.टी. में ले गये। अंदर जाते हुए उन्होंने हम सबको एक बार मुड़कर देखा, मुस्कुराये और चले गये। ओ.टी. के दरवाज़े बंद हो गये। ज़ाहिद उनके साथ था।

दस दिन बाद बायोपसी की रिपोर्ट आ गयी। लंग कैंसर कन्फर्म हो गया। पापा कई सालों से दो पैकेट सिगरेट पीते थे तो जब लंग कैंसर होने की बात सुनी तो कोई ताज्जुब नहीं हुआ। पर जब यह पता लगा कि लंग्स में एस्बेस्टस कैंसर है और आखिरी स्टेज में है। हम सब सन्न रह गये। इसकी कतई उम्मीद नहीं थी।

पापा का दर्द दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था। ऑनकॉलोजिस्ट ने कहा कि पेन मैन्जमेंट ही कर सकते हैं और दूसरा कोई इलाज नहीं है। मम्मी ने डॉक्टर से पूछा कि यह एस्बेस्ट्स कन्सर क्या होता है। डॉक्टर ने कहा कि यह ऑक्यूपेशनज डिसीज़ है। जो लोग बाईलर रूम में काम करते हैं उनको एस्बेस्टस कैंन्सर हो जाता है। पापा इंडियन नेवी में बीस साल (1954–74) बॉइलर इंजीनियर थे और उन दिनों बाइलर रूम ए.सी. नहीं हुआ करता था। एस्बेस्टस शीट्स का इस्तेमाल हुआ करता था और न चाहते हुए भी बॉयलर रूप के धुएँ में साँस लेना पड़ता था। आजकल तो बाइलर रूम एअर कंन्डीशन्ड हो गये हैं। इंजीनियर की केबिन अलग हो गयी है और असिस्टेंट का रूम भी एअर कंडीशन्ड हो गया है। रूम के शीशे में से बाइलर के पैरामीटर्स देखे जा सकते हैं।

पापा के बारे में एक बात बताना ज़रूरी है। पापा बड़े ही खुद्दार इन्सान हैं। मेरे दादा सरकारी महकमें में एक मामूली कलर्क थे और सुपरिन्टेन्डेंट के पद से रिटायर हुए। मेरी दादी प्राइमरी स्कूल की हैडमिस्ट्रेस थी। चारों बेटे ऊपर नीचे के थे। सबमें डेढ़–डेढ़ साल का फर्क था। एक वक्त ऐसा आया कि चारों एक साथ स्कूल जा रहे थे। पापा को लगा कि माँ–बाप चारों की पढ़ाई का बोझा नहीं उठा सकते। एक दिन अचानक उन्होंने ऐलान कर दिया कि वे पढ़ाई के साथ–साथ कमाई भी करेंगे। दादा–दादी ने बहुत समझाया पर वे अपनी ज़िद पर अड़े रहे। दादा जी परेशान थे। आज़ादी मिले कुछ ही साल हुए थे। मुल्क में बेरोज़गारी बढ़ रही थी। यह उनका दौर तो था नहीं जब दादी ने आठवीं पास करके स्कूल में थी और दादा जी ने इन्टर पास करते ही नौकरी शुरू कर दी थी। कहाँ से नौकरी आयेगी ? आखिर दादी जी ने अपने एक वकील दोस्त के यहाँ उनको केस पेपर्स की फाइलिंग करने का काम दिलवा दिया और उन्हें बीस रुपये माहवारी तनख़्वाह मिलनी शुरू हो गयी। वे बहुत खुश थे। पहली तनख़्वाह दादी के हाथ में लाकर रख दी। दादी कभी उन्हें देख रही थीं और कभी पापा जी को। दादा जी मुस्कुरा रहे थे। असल बात यह थी कि काम तो पापा वकील के यहाँ किया करते थे पर तनख़्वाह दादा हर महीने वकील को दिया करते थे जो अपने हाथों से पापा को दिया करते थे। दादी ने पापा की कमर थपथपायी और कहा "इतनी सी उम्र में कितना ज़िम्मेदार बन गया है।" और फिर अपने पल्लु से अपनी नम आँखें पोंछ लीं। ग्यारहवीं पास करने के बाद पापा एन.डी.ए. में चले गये और वहाँ से इंडियन नेवी में। हर साल चार महीने की छुट्टी पर आते, सारा वक़्त दादा–दादी के साथ गुज़ार कर चले जाते। दोनों ताऊजी के बाहर जाने के बाद दादा–दादी, चाचा जी के साथ रहने लगे और इसके बाद वे जब भी आते तो चाचा जी के यहाँ ही रुकते।

बीस साल बाद पापा ने वीआरएस ले लिया। पापा ने लवमैरिज की थी। मम्मी आई.एन.एस. ज़हाज के कप्तान की लड़की थीं। पापा हमेशा दिल्ली में रहना चाहते थे। बस दिल्ली में एक बड़ा मकान खरीदा और हम सब दिल्ली आ गये। वीआरएस के बाद पापा ने बॉयलर स्केलिंग का अपना काम शुरू कर दिया। मतलब फिर वही बॉयलर रूम में पाँच पाँच घंटे काम। कुछ ही महीनों में पापा को यू.पी. की सारी शुगर फैक्ट्रियों के बॉयलर स्केलिंग के कॉन्ट्रेक्ट मिल गये। सीज़न में वे महीने में बीस दिन बाहर रहने लगे। मैंने मैकेनिकल इंजीनियरिंग खत्म कर ली और बड़े भाई ने केमिकल इंजीनियरिंग पूरी कर ली। मम्मी एक एनजीओ चलाने लगीं। वे अस्पतालों में जाकर मरीजों की मदद करने लगीं। मैंने शौकिया एस्ट्रोलॉजी के अडवान्स कोर्स भी कर लिये। दुनिया भर का भविष्य बताने लगा। अक्सर मेरी प्रीडिक्शन्स ठीक निकला करती थीं।

आज फिर उन्हें साँस नहीं आ रहा था। अस्पताल लेकर गये। डॉक्टर ने फिर पानी निकाल दिया और हम घर

ले आये। दर्द था कि बढ़ता ही जा रहा था। ज़ाहिद हर तीसरे दिन मार्फीन की डोज़ बढ़ा देता था। तीन हफ्ते के बाद ज़ाहिद ने कहा कि मार्फीन की सप्लाई के बारे में सरकारी कानून बहुत सख़्त है, इससे ज़्यादा डोज़ नहीं बढ़ाई जा सकती। इंजक्शन के साथ–साथ उसने स्कीन पैचेस भी लगाने शुरू कर दिये। मम्मी थी कि कैन्सर के बारे में हर रोज़ नई किताब पढ़ती और ज़ाहिद को बताती कि वह इस किताब के मुताबिक इलाज करे। हर तीसरे दिन वह ज़ाहिद को किसी न किसी किताब में सुझाये गये इलाज बताती और ज़िद करती कि वह इसके मुताबिक इलाज करे। उसने डॉ. सिद्धार्थ चक्रवर्ती की किताब "द एम्प्रद ऑफ ऑम मे मेर्जज़ : ऑटो बायग्राफी ऑफ कैन्सर" तक पढ़ डाली। ज़ाहिद उनका मन रखने के साथ वह सब कुछ कर दिया करता जैसा मम्मी कहती। चाचा भी रोज़ आया करते। पाया उनका हाथ पकड़े बच्चे की तरह रोते बिलखते रहते। चाचा भी रोया करते। यही कहा करते कि दर्द कम हो जायेगा। ज़ाहिद ने डोज़ बढ़ा दी है। हमने सरकार से ज़्यादा डोज़ की इजाज़त तो ली थी और ज़ाहिद बढ़ी हुई डोज़ देने लगा। दस दिन दर्द कम रहा। पर बाद में फिर उतना ही ज़्यादा दर्द रहने लगा। इस बार जब अस्पताल लेकर गये तो पेट स्कैन की रिपोर्ट से पता लगा कि कैन्सर अब लीवर में भी चला गया। ज़ाहिद ने कहा "यह बात अच्छी नहीं है। फिक्र की आत है।

जिस दिन भी हम पापा को अस्पताल से लेकर आते मैं फौरन उनकी कुंडली देखता। मुझे कभी उनका सूरज अस्त होता हुआ नहीं दिखा। मैं हर बार मम्मी को कहता "मम्मी, कुछ नहीं होगा पापा को। वे जल्दी ही इस भँवर में से निकल आयेंगे।" मम्मी हमेशा सिद्धार्थ चक्रवर्ती की एक लाइन : "हिस्ट्री रीपीट्स इट सेल्फ बट साइंस रेवरबदेटस" दोहरा दिया करती थीं। मैं अवाक् देखता रह जाता था। मम्मी जानती थीं। वह उस प्रतिध्वनी, उस गूँज को सुन सकती थीं जिसे मैं कुंडली में नहीं देख पा रहा था। मुझे अपनी 'साइंस' पर पूरा यकीन था, शायद कहीं एक गरूर कि मैं गलत हो ही नहीं सकता।

आज पापा ने अपने वकील को बुलाया था। चाचा जी भी आ गये थे। दर्द बहुत ज़्यादा था। रोना रुक ही नहीं रहा था। हाथ के इशारे से हम सबको बाहर जाने के लिये कहा। कमरा बंद करने को कहा। चाचा जी और माथुर अंकल एक घन्टे बाद बाहर आये। माथुर अंकल चाय पीकर चले गये और सब कागज़ात अपने साथ ले गये। थोड़ी देर में चाचा जी भी बिना कुछ कहे चले गये। अगले दिन चाचा जी एक फाइल लेकर आये और पापा के कमरे को बंद करके दस मिनट बाद बाहर आये और फाइल लेकर चले गये। हम सब समझ गये कि पापा ने विल कर दी है। जब हम अंदर गये तो उनके चेहरे पर एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी पूरे करने की संतुष्टि की भावना नज़र आ रही थी, हालांकि दर्द के मारे उनके चेहरे की नसें चमक रही थीं।

पापा ने अपना बिज़नेस बहुत बढ़ा लिया था पर उन्होंने अपना डिलिवरी बॉय नहीं बदला। राकेश भैया सोलह साल के थे जबसे वह पापा के साथ काम कर रहे हैं। पापा हमेशा उनको ही अपने साथ ले जाया करते थे। शायद नहीं चाहते थे कि हमें वह अपने काम में शामिल करें। राकेश भैया की शादी पापा ने ही करवायी थी, उनके तीन बच्चे हैं, उनकी पत्नी और दो बच्चे उनके गाँव में रहते हैं सिर्फ एक बेटा है जो उनके साथ रहता है। उसको पापा ने अच्छे स्कूल में दाखिल करवा दिया है। अब वह दसवीं क्लास में है।

आज बहुत दर्द है। ज़ाहिद ने कहा "फौरन अस्पताल ले आइये। दाखिल करना ज़रूरी है। घर पर इलाज नहीं हो सकता।" अस्पताल ले गये। अस्पताल का मेडिकल सुपरिन्टेन्डेंट दाखिला करने के लिये तैयार नहीं था। कह रहा था इतने क्रिटिकल पेशंट को हम दाखिल नहीं कर सकते। अस्पताल बदनाम हो जायेगा। इनको मार्फिन का हाई डोज़ देकर हम मुक्त नहीं कर सकते। यह मेडिकल एथिक्स के खिलाफ है। मैडम हम यह नहीं कर पायेंगे। मम्मी उनसे रिक्वेस्ट किये जा रही थीं। मम्मी ने उनसे कहा, "आजकल सब एथिक्स और मॉरेल की बात करते हैं। मॉरेल पुलिसिंग का ज़माना आ गया है। सुप्रीम कोर्ट पिछले दस बरस से ब्लैकमनी, भ्रष्टाचार, कोलगेट, टू जी स्पैक्ट्रम जैसे मॉरेल इशियुज़ में लगा हुआ है। भ्रष्टाचार करना, टैक्स चुराना, प्राकृतिक संसाधनों को कम दामों में बेचना, इन्डस्ट्रीलिस्ट के मुनाफा बढ़ाने जैसे मॉरेल सवालों में रूलिंग दे रहा है। सुप्रीम कोर्ट सिटीज़न दिये गये कॉन्सटीट्यूशनल फन्डामेन्टल राइट टू लाइफ हैल्थ, ड्रिंकिंग वाटर, पॉल्यूशन फ्री शहर में रहने का राइट इन्श्योर नहीं कर पाया, भोपाल गैस पीड़ितों को एक पुश्त के बाद भी मुआवज़ा नहीं दिलवा पाया, सांप्रदायिक दंगों में बेकसूर मुसलमानों को रिहा नहीं करवाया। बस सोसायटी के मॉरल सुधारने, साइके सुधारने में लगा हुआ है। मानो कॉन्स्टिट्यूशनल इशूज तो है ही नहीं। बेसिक राइट्स है ही नहीं। आये दिन सुप्रीम कोर्ट के फैसलों की धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। मॉरल सुधार कोई है। हम जानते हैं इनकी ज़िन्दगी बहुत कम बाकी है। चंद दिनों या चंद घंटों की ही है। इनका दर्द देखिये जितने चाहे पैसे ले लें पर इनको पेनलेस डेथ का राइट तो मत डिनाई कीजिये। इनका परिवार आपसे रिक्वेस्ट कर रहा है कि इनके राइट टू डिगनिफाईड डैड की एन्श्योर करें। हम आपको लिख कर दे सकते हैं कि इनकी डैथ में

आपके अस्पताल की तरफ से कोई लापरवाही नहीं हुई है। हम कोई केस नहीं करेंगे।" आखिर ट्रीटिंग डॉक्टर ज़ाहिद की अंडरटेकिंग पर पापा को दाखिल कर लिया गया और उन्हें मार्फीन की हाई डोज़ दे दी गयी। देखते–देखते पापा दर्द मुक्त हो गये। हम सब जानते थे कि डैथ ऐसे ही होगी पर सब सदमे में थे। मम्मी तो जैसे बुत बनीं उनका सिर सहलाती रहीं। मैं रोये जा रहा था। ज़ाहिद और बड़ा भाई सारी फॉर्मेलिटिज़ पूरी कर रहे थे। अस्पताल ने डेथ सर्टीफिकेट में लिखा, "डाइड ऑफ एस्बेस्ट्स कैन्सर। कॉर्डिएक अरेस्ट।" मैं यह नहीं बताना चाहता कि हमने कितने का बिल चुकाया।

ज़ाहिद मुझे बाहर ले गया और उसने पूछा, "डैथ का क्या टाईम लिखूँ ? मैंने उसे देखा, उसकी आँखें पूँछ रही थीं?" पन्डित, कोई घड़ी बताओ जिसमें तुम्हारे पापा को जन्नत नसीब हो। आजकल तो सब घन्टा, मिनट, सेकेन्ड तक बताते हैं जब सिज़ेरियन करके बच्चे को दुनिया में लाया जाये। डॉक्टर को सख़्त हिदायत होती है कि वह इस तरह प्लान करे कि बच्चे का रोना उसी घड़ी होना चाहिए।" मैंने कुछ नहीं कहा। उसने वही टाइम लिख दिया जिस वक़्त उन्हें मार्फीन दी गयी थी। मैंने कुछ नहीं कहा।

ज़ाहिद ने ऐम्बुलेन्स का इंतज़ाम कर दिया। डेड बॉडी रखवा दी। चलते चलते ज़ाहिद ने कहा, "इन्फेक्शन अभी अंदर है। जल्दी से जल्दी पापा की डैड बॉडी को क्रिमेट कर दो।" मैंने सबको इन्फार्म कर दिया और तीन घन्टे के बाद का वक़्त भी बता दिया। सीधे क्रिमेशन ग्राउँड ले गये। अगले दिन अस्थियाँ गंगा में बहा दीं। घर लौटे तो सारे घर में सन्नाटा था। कभी कभी अंदर से रोने की आवाज आतीं। सिर्फ मम्मी के रोने की आवाज़ नहीं आ रही थी। मैं अंदर गया। देखा कि वह तो बुत बनी बैठी हैं। बड़ी ताइ जी, चाची जी, मौसियाँ, हमारी पत्नियाँ चारों तरफ बैठी अपने–अपने आँसू पोंछ रही थीं। ताई जी ने कहा, "किसी तरह उसी को रुलाना ज़रूरी है।" मैंने ज़ाहिद से पूछा, "क्या किया जाये ?" ज़ाहिद ने कहा, "ट्रॉमा में हैं। कुछ तो ऐसा करो जिससे शादी से पहले की मुलाकातों की यादें ताज़ा हो जायें।" मैंने बड़ी ताई जी से पूछा "ऐसा क्या किया जाये ?" बड़ी ताई जी ने कहा, "शादी से कुछ ही दिन पहले यह उमर को लोनवाला ले गये थे। वहाँ कुछ फोटो खींचे थे। उनको दिखा शायद रो पड़े।" मैंने आहिस्ता से वह अलबम आगे रख दी। गौ ... र ... व तुम इतनी बे ...व ..फा ..ई .. और मम्मी रोने लगीं। बाकी सब भी रोने लगे। बड़ी ताई जी ने मम्मी को संभाला। मम्मी कह रही थीं, "आपको तो वो अपनी माँ मानते थे। आपकी भी नहीं सुनी। दर्द से रोते बिलखते रहे और आप देखती रहीं। कैसी माँ हैं आप ?" ताई जी उन्हे समझा रही थीं, "ईश्वर की मर्ज़ी के आगे हम सब लाचार हैं, उमा। हमें तो ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये कि औरों की तरह दो दो साल नहीं जिए।" ताई जी ठीक कह रही थीं। कैन्सर डिटक्ट होने के बाद से पापा कुल अठावन दिन जिए। अपने प्लेटिनम जुबली ईयर के सैंतीस दिन ही दर्द में जिए। मुझे याद है ज़ाहिद ने कहा था कि दुलार करो जल्दी चले जाएंगे वर्ना तुम सब लोग खुदी से दुआ करोगे कि उन्हें उनके दर्द से जल्दी आज़ाद करें। मरीज़ के करीबी रिश्तेदार उसकी सेवा करते करते थक जाते हैं, चिड़चिडे हो जाते हैं, घर का माहौल भारी हो जाता है, मरीज़ भी खुद जल्दी आज़ादी की दुआ करता है।"

पापा के कहने के मुताबिक चौथा कर दिया।

आज पहला बरसी है पापा की। मैंने कोई मुहूर्त नहीं निकाला, कोई पन्डित नहीं बुलाया। चौथे के दिन बड़े ताऊ जी ने जाते जाते कहा था, "रोहन, जानते हो मैंने कभी तुमसे क्यों नहीं पूछा अपने कल के बारे में ? "नहीं।" जानते हो मैं अपने बीते हुए कल को अच्छी तरह जानता हूँ, मैंने उसे जिया है, अपने आज को मैं जी रहा हूँ और आने वाले अगले पल के इकसाइटमेन्ट को मिस नहीं करना चाहता।"

पापा के चौथे के बाद मैंने अस्ट्रालॉजी की सारी किताबें अलमारी में बंद कर दी हैं।

ifjp; %

योगेश भटनागर। जन्म दिल्ली में। जेएनयू से रूसी साहित्य के प्रोफेसर के पद से अवकाश प्राप्त। दो कहानी संग्रह – "नसीबन" और "एक लम्बा दिन" प्रकाशित। रूसी से कहानियों के हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित। फ्योदर दस्तायेवस्की की छोड़ी बड़ी कहानियों के हिन्दी में अनुवाद के तीन संकलन प्रकाशित। चेखोव की कहानियों के रूसी से हिन्दी में चार संकलन प्रकाशित। हँस, कथादेश, विपाशा आदि पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।

आजकल संप्रति : 14–ए/602, विपुल ग्रीन्स, सोहना रोड, सेक्टर–48, गुड़गाँव–125001, हरियाणा।

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी–प्रचार द्वारा एकता स्थापित करने वाले सच्चे भारत–बन्धु हैं।

–श्री अरविन्द

अंग्रेज़ी सीखकर जिन्होंने विशिष्टता प्राप्त की है, सर्वसाधारण के साथ उनके मत का मेल नहीं होता।

–रवीन्द्रनाथ ठाकुर

Mk- rqylhjke

प्रोफेसर एस.एन. मालाकार

प्रोफेसर तुलसीराम जिन्हें उनके अन्य नजदीकी दोस्त तुलसी और तुलसीराम के नाम से पुकारते थे। मैं उन्हें तुलसी जी के नाम से पुकारता था। अधिकांश लोग उन्हें उनकी विद्वता से और उनकी रचनाओं से जानते हैं लेकिन ऐसे लोगों की भी अपार संख्या है जो उनको उनके व्यवहार से, उनके सानिध्य से, उनके जीवन सहचर बनके, उनके स्मरण शक्ति का कायल होकर या उनके भोजन–कला एवं उसके स्वाद का मुरीद बनकर और कई बहुआयामी रोचक अनुभवों का लुत्फ प्रदान करने वाले के रूप में जानते हैं। मैं पैंतीस वर्ष तक उपर्युक्त सभी प्रकार के मिश्रणों का अनुभव लिए उनके आस पास रहा हूँ। मैंने कभी उनकी रचनाओं पर प्रकाशित प्रतिक्रिया या कोई लेख नहीं लिखा। उनकी मृत्यु के पहले जब मैं अंतिम बार 319 रूम नं SIS का जो कमरा है से साथ–साथ जब बाहर निकले तो 308 रूम नं. जो मेरा कमरा था उसके पास से गुजर रहा ही था कि मैंने मुर्दहिया का एक प्रसंग पर उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही। मैं अमूमन तुलसी जी से कभी बौद्धिक पूर्णता के भाव से प्रश्न नहीं पूछा क्योंकि मुझे यह डर लगता था कि मैं अपनी मूर्खता पर डाँट न खा जाऊँ। फिर भी रास्ते में तुलसी जी से लिफ्ट में यह पूछ ही डाला कि जब आप कलकत्ता जा रहे थे तो रेलगाड़ी में इतनी भीड़ थी कि आप पायदान पर चढ़े। आपको बच्चा समझकर आपके आसपास के ही इलाके के लोग भी पायदान पर भीड़ बनाकर चढ़ी हुई थी। उनमें से एक ने आपको बच्चा समझ अपनी बाहों से घेरते हुए तीन घंटे तक पायदान पर ही सुरक्षात्मक ढंग से रखने की कोशिश की। फिर आप स्टेशन पर उतर गये और खड़े होकर उनको अपनेपन से देखते रहे। फिर न जाने उन्हें कौन सी मानवीय भावना आयी कि विह्वल होकर वो बोल उठे कि अब कभी "पायदान पर कभी चढ़कर न चलिहा" और ट्रेन खुलने लगी। आप मूक द्रष्टा से देख रहे थे और अपनापन के कारण एकटक उन्हें दूर जाती गाड़ी में देखते रहे। इस पर तुलसी जी ने कहा वास्तव में उस क्षण मैं रुआंसा सा हो गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि इस घटना को आप कैसे देखते हैं ? मैंने कहा इस घटना को ही नहीं बल्कि मैं पूरी किताब को जिया करता हूँ। मैंने अपनी हाथ की उंगलियाँ दोनो आँखों के कोरो पर लगाई। उन्होंने पहली बार मेरे कंधों पर हाथ रखा और अपना चश्मा उतारा। उनकी भी उँगलियाँ सवाल के साथ आँखों को पोंछने लगी थी। कुछ ही दिनों बाद रॉकलैंड हास्पिटल में मैं और प्रो. अजय पटनायक आईसीयू सेन्टर में मिलने गया। वे बोल नहीं पा रहे थे। 20 मिनट बाद हम चलने को हुए यह कहकर कि फिर मैं आऊँगा, उन्होंने अपने हाथ के टखने पर हाथ को ऊपर उठाया। मैं उनका हाथ दोनों हाथ से पकडे रहा। उनके कमजोर हाथ मुझे छोड़ नहीं रहे थे मानों वे कह रहे थे अब मालाकार जी आपसे पुनः भेंट न हो पायगी। मैं वह क्षण भूल नहीं पाऊँगा जब उन्होंने मुझे जाते हुए एकटक दृष्टि से देखते रहे। और फिर उन्हें जब फरीदाबाद में शिफ्ट किया गया तो फिर वे चल ही बसे।

मेरी पहली मुलाकात 1980 के जुलाई में हुई। मैं अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान में एम.ए. की लिखित परीक्षा पास कर ली थी। तब 30 नम्बर की मौखिक परीक्षा होती थी। चलते चलते यह भी बता दूँ मैं गाँव में सी.पी.आई. का शाखा सदस्य था तथा भागलपुर विश्वविद्यालय में ए.आईएस. एफ. में सक्रिय था। मैंने जयप्रकाश नारायण आन्दोलन का पुरजोर विरोध किया था क्योंकि "जयप्रकाश ने कहा था कि यदि आरएसएस फासिस्ट है तो मैं भी फासिस्ट हूँ"। अपनी इस पृष्ठभूमि के साथ दिल्ली आया था। बाद में यह उन्होंने भी बताया की बनारस में उन्होंने भी जे.पी. आन्दोलन का भरपूर विरोध किया था। मैं मध्यविद्यालय की नौकरी छोड़कर जेएनयू की तरफ रूख किया था। एआईएसएफ ऑफिस (4/7 आसफ अली रोड पर) में एआईवाईएफ के नेता कामरेड अमरेन्द्र नारायण सिंह से जेएनयू के एआईएसएफ के साथी कामरेड मातादीन गुप्ता को मौखिक परीक्षा की तैयारी हेतु भार सौंपा गया। उन्होंने तुलसी जी के पास ही मुझे ले जाना उचित समझा। शाम का समय था। वे पेरियार में कमरा नं. 313 (तृतीय फ्लोर) पर रहते थे। तुलसी जी बालकोनी में थे। का. मातादीन ने मुझे कमरे पर ले गये और तुलसी कहकर हॉक मारी। मैं कमरे के बाहर खड़ा होकर कमरे का दृश्य देखकर अचंभित हुआ। उनकी टेबल का पूरा किनारा किताब से भरा पड़ा था। उनके रैक पर भी किताबें भरी पड़ी थी। सोने वाले चौकी पर भी कितने ही किताबें थी। थोड़ी सी जगह खाली थी शायद सोने और आराम के लिए। टेबल के साथ सटे दो मुदगल थे। टेबल पर दो मूर्तियाँ थी। एक हरकूलस की जो पीठ पर ग्लोब लिए था और दूसरी लेनिन की। बालकनी की तरफ आँख उठाई तो जूठी थालियों, प्लेटों, चम्मचों और छुरियों का ढ़ेर सा दीख रहा था। जब वे बालकनी से निकले तो का. मातादीन ने मुझसे परिचय कराया और जोर देकर कहा इसे अंग्रेजी एकदम नहीं आती है और हिन्दी भी बिहारी टोन में है अतः आप ही इसे मौखिक परीक्षा के लिए सरल भाषा में कुछ बता सकते हैं। उन्होंने मुझे सर से पांव तक देखा। उन्हें का. मातादीन के बातों में सच्चाई लगी। मुझे उन्होंने कहा बैठिये। मैं गुमशुम बैठा था। उनके पढ़ने लिखने के तौर तरीके ने ही मुझे बौका

एवं मूर्खता का एहसास करा दिया था। फिर उन्होंने मुझसे पहले अपने घर की हालात, कहाँ पढ़ाई की, वहाँ क्या क्या पढ़ाई हुई आदि के बारे में पूछा। फिर सरल भाषा में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की बातें बताई। फिर अमेरिका को समझने के लिए उन्होंने अपनी एक किताब दी जिसे उन्होंने खुद ही लिखा था उसका नाम था CIA hand in Angola तुलसी जी से मिलने के पहले मैं एक बिहारी छात्र वाई.के. रंजन से मिला था। उन्होंने मेरे ऊपर अंग्रेजी की धौंस जमा दी थी और कहा था कि नेशनल एक्टर के बारे मे जरूर पढ़ लेना। मैं तो अभी तक यह शब्द भी नहीं सुना था। नेशनल एक्टर दिमाग में घूम ही रहा था। मैं तुलसी जी से पूछ बैठा कि ये नेशनल एक्टर क्या है ? उन्होंने अपनी आँखें बड़ी की और जोर से पूछा किसने आपको नेशनल एक्टर के बारे में बताया। मैं डरते हुए झट से कह दिया कि बिहार का एक लड़का वाई.के. रंजन हैं उन्होंने ही बताया। वह, वाई.के. रंजन जो सीआईए का एजेंट है। इस सब बात को भूल जाइए जैसा मैं बताता हूँ वैसा करिये।

उन्होंने बताया कि जैसा आपने पढ़ा है उसे ही सरलता और सहजता से बोलियेगा। आपको वही पूछा जायगा जो आपने पढ़ा है कोई ऊपर की चीज नहीं पूछी जाएगी। आप सहज रहिए और हड़बड़ मत कीजिए। सहजता और सरलता की सीख ने मौखिक परीक्षा में मुझे काफी काम दिया। जहाँ कहीं भी वे किसी शीर्षक पर बोलने जाते थे मैं वहाँ पहुँच जाता था। उन दिनों पोलैंड में लेगवलेसा का जोर था जिनका तुलसी जी घनघोर विरोधी थे। मैं उनका कुछ मुरीद यों हुआ कि रोजाना किसी न किसी बहाने प्रणाम करके चला आता था। क्योंकि मैं भी पेरियार के तृतीय फ्लोर के 316 नं. कमरे में रहता था। स्वाभाविक है कि हम दोनों का कमरा आसपास ही था। कुछ देखा होगा मुझमें कि फिर वे मुझे समय समय पर बुलाने लगे। अमूमन एक सप्ताह में तीन चार दिन शाम के वक्त सरोजनी नगर स्टेशन पर लगने वाली मछली हाट से छोटी मछली (सीधरी) जिसके वे शौकीन थे को खरीदने भेजते थे। फिर शाम को हम दोनों बड़ी चाव से खाते और इस क्रम में अन्य मछलियों की भी वे चर्चा करते थे। बाटा, कलला, पोटिया, टेंगड़ा, गरई, बाम आदि की चर्चा और उसके स्वाद की भी चर्चा होती थी। मेरे बनारस जाने वक्त बनारस की बेलगगरा मछली की चर्चा की जिसे मैं डॉ. सूरजभान के पास जाकर बनवाया और खाया। उन दिनों 12 रुपये का माहवारी बस पास बहुत काम आता था। यह सिलसिला 1986 तक जमकर चला जब तक उनका पीएच.डी. खत्म न हुआ। उन्हें शास्त्री गायनों, प्रसिद्ध नाटकों और नृत्यों को देखने आदि का भारी शौक था। शाम के 3–4 बजे वे कभी त्रिवेणी कला संगम, तो कभी प्रगति मैदान के ओपेन एयर थियेटर आदि आदि जगहों पर मुझे ले जाने लगे। अमूमन उनके कई पुराने दोस्त भी वहाँ उन्हें मिल जाया करते थे। मैं आज भी अचंभित हूँ क्यों कि वे शास्त्रीय गानों के इतिहास, उनके घरानों का इतिहास, रंगकर्म की विधाओं, नृत्य के कलात्मक शैली की, उनके उद्‌भव की, उनके प्रेरणास्रोतों की व्यापक और इतने प्रमाणिक रूप से व्याख्या करते कि मैं ही नहीं उनके अन्य पारंगत साथी भी दंग रह जाते। मराठी नाटक 'घासीराम कोतवाल' मैंने उनके साथ ही देखा था उसमें लावणी नृत्य था जिसके विधाओं और सौंदर्य के बारे में उन्होंने मुझे काफी बातें बतायी। उनके नजदीकी सभी जानते हैं कि उनमें बनारस की सांस्कृतिक विशेषता कूट कूट कर भरी थी। होली के अवसर पर गालियों से भरी कविता में राजनीतिक संदेश को इस प्रकार बिखेरते थे कि लोग उसे सुनकर दूसरों को भी सुनाने में लग जाते थे। राजनीतिक व्यंग्य से भरी उनकी एक कविता को मैंने खुद ही पढ़ा था –

चना जोर गरम
मेरा चना बना है आला
उसमें दिया गरम मसाला
चना जोर गरम

मेरे चने का स्वाद
खाकर कॉमरेड नम्बूदरी पाद
जनसंघ में ढूँढ रहे जनवाद
चना जोर गरम

यह कविता उन्होंने आरएसएस के साथ चलने वाले जयप्रकाश आन्दोलन के साथ सीपीएम की साझीदारी पर लिखी थी। उन्होंने ऐसी सैकड़ों कविताएं लिखी जो राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की ओर इशारा करती थी वह भी शुद्ध बनारसी स्टाईल में। कई बार लोगों का छोटा छोटा समूह चुपचाप और छुपछुप कर उनकी कविता संग्रह का सांगोपान पाठ करने और सुनने आते थे। इन कविताओं में रौद्र रस, श्रृंगार रस, व्यंग्य और समसामयिकता छिपी रहती थी। उनकी अनुवादित कविता भी एक बार जनयुग में छपी। ये कविता सुकांत भट्‌टाचार्य की बंगाली में थी। तुलसी जी उनके बारे में मुझे बताये कि सुकांत भट्‌टाचार्य गरीबी और भुखमरी में कम्युनिस्ट के समर्पित पूरा वक्ती कार्यकर्ता रहे। यह वही कविता का अनुवाद था जो सुकांत भट्‌टाचार्य अपने मरने के पहले एक पुर्जे में लिखकर तकिये के नीचे रख दिये थे जिनका आशय था कि "इस चाँदनी रात की पूर्ण चन्द्रमा भूख की आग में सूर्य के अग्नि गोले के समान लगता है।"

मेरी यादों के गलियारे में कई और रोमांचक क्षणों की पूंजी मौजूद है। प्रस्तुत 'परिसर' में आज उनके बारे में कुछ लिख रहा हूँ लेकिन तुलसी जी के द्वारा 'परिसर' के प्रकाशन के प्रारंभिक दौर में ही एक लेख जेएनयू के बारे में लिखा गया था जिसे पढ़कर मैं जेएनयू के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त की थी। इस अंक के कुछ प्रसंगों को मैं रख पाया जो केवल छात्र जीवन तक का है। उसके बाद एक प्राध यापक सहचर के रूप में मेरे पास यादों की लड़ी है जिसे मैं अन्य अवसर पर लिखूँगा।

tehuh dh ;k=k & Mk;jh d dN iUu

प्रशांत कुमार पाण्डेय

पिछले साल मई के महीनें में मैं जर्मनी के वुपरटाल शहर पहुंचा जो जर्मनी के दो प्रमुख शहरों ड्यूशेलडोर्फ़ और कोलोन के नजदीक है। हालांकि यह पहली बार नहीं था जब मैं जर्मनी की यात्रा पर था। लेकिन पहले की यात्राओं और इस यात्रा में अंतर यह है कि पहले मैं केवल जर्मन भाषा पढ़ कर जर्मनी गया था और इस बार जर्मन साहित्य, इतिहास, दर्शन का अध्ययन करने के बाद एक शोधार्थी के रूप में जर्मनी पहुंचा। इस बार का जर्मनी पहले वाले जर्मनी से इतना भिन्न होगा मैंने कभी ऐसा नहीं सोचा था।

पहली बार जब कोई भारतीय छात्र जर्मनी जाता है तो उसके दिमाग में जर्मनी की वह छवि रहती है जो मैक्समुलर भवन जैसी संस्थाओं से प्रेरित होती है। इस छवि को कुछ शब्दों में बहुत अच्छे तरीके से ममझा जा सकता है, जैसे – Land of Ideas, October Fest, German Beer, Volkswagen, Angela Merkel and Environmental consciousness of the German state etc. लेकिन जब कोई एक शोधार्थी के रूप में वहां पहुंचता है तो उपरोक्त शब्द इतना खटकते हैं कि मत पूछिये और हम जेएनयू वालों की तो बात ही अलग है, जो किसी भी समाज में हमेशा यह पता लगाने का प्रयास करते हैं कि शोषक और शोषित यहाँ कौन है।

जर्मनी के किसी भी हवाई अड्डे पर पहुंचने पर आपको सबसे पहले एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा जो कोई भी नहीं चाहता। वहां पर यूरोपियन लोगों के लिए अलग लाइन होती है तथा और सारे लोगों के लिए अलग लाइन। यूरोपियन लोगों वाली लाइन थोड़ी छोटी होती है वहां काम जल्दी हो जाता है और दूसरी लाइन में थोड़ा समय लगता है, इसे नस्लभेद कहा जाए या भेदभाव इस बात पर लम्बी बहस हो सकती है।

जर्मनी और भारत इस विश्व के दो ऐसे अनोखे देश हैं जहाँ का शिक्षित वर्ग और खासकर एकेडमिशियन ही दूसरे देश की वास्तविकता से परिचित रहता है। मेरा मतलब है कि जर्मनी में केवल एकेडमिशियन ही इस बात को जानते हैं कि भारत क्या है और केवल भारत का शिक्षित वर्ग ही जानता है कि जर्मनी क्या है। दोनों देशों की आम जनता एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह से भरी है, कुछ पूर्वाग्रह पॉजिटिव हैं तो कुछ नेगेटिव भी। चिकन टिक्का, ताज महल और हिन्दुस्तानी खाना शायद ही कोई जर्मन न जानता हो जो भारत में दिलचश्पी लेता है।

आप भारत के किसी ऐसे व्यक्ति से पूछिये जो जर्मनी के बारे में थोड़ा कम ज्ञान रखता हो तो वह सबसे पहले हिटलर का नाम लेगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह व्यक्ति किसी तरह के भेदभाव से प्रेरित होकर ऐसा नहीं करता। भारत में हिटलर की अच्छी छवि आम लोगों में क्यों है इसको पहले जानना बहुत जरुरी है। ज्यादातर लोग यह समझते हैं कि नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जर्मनी गए थे और वहां हिटलर ने भारत की स्वतंत्रता में सहयोग देने का आश्वासन दिया था और हिटलर स्वयं अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध लड़ रहा था जो भारत के लोगों पर काफी अत्याचार करते थे. ज्यादातर ऐसे लोगों को पता नहीं होता है की उसने कितने मिलियन यहूदियों को मरवाया। उस भयंकर यहूदी त्रासदी के बारे में कम ही लोग जानते हैं जिसे सुनकर हीं रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

दूसरी तरफ जर्मनी के कई लोग इस पूर्वाग्रह से पीड़ित हैं कि भारत के बहुत सारे लोग जर्मन तानाशाह हिटलर से प्रभावित हैं और वे उसकी राजनीति को पसंद करते हैं। वे इस बात को जानने का प्रयास नहीं करते कि इसका कारण क्या है। सबसे बड़ा शॉक तो मुझे तब लगा जब एक जर्मन शोध–छात्रा ने भी इस पूर्वाग्रह पर अपनी मुहर लगा दी। मैंने बाद में उसे बताया की जो भारतीय लोग हिटलर को अच्छा बताते हैं वह ये नहीं जानते की उसने कितने लोगों को मौत के घाट उतरवाया था, उनको बस यह पता है कि हिटलर एक राष्ट्रवादी था और उपनिवेशवाद से लड़ने के लिए भारत को भी राष्ट्रवाद को अपनाना पड़ा था। खुद गाँधी एक राष्ट्रवादी ही थे।

उपरोक्त चीज़ों के बावजूद कई सारी ऐसी चीज़ें हैं जिससे भारत जर्मनी से बहुत कुछ सीख सकता है। जर्मनी में गरीबों का जीवन उतना कठिन नहीं है जितना हमारे देश में है। वहां पर खाने पिने की चीज़ें बहुत सस्ती है और अन्य उपभोग की वस्तुएं काफी महंगी, ताकि गरीब लोग भी अपना जीवन–यापन आसानी से कर सकें। सरकार के तरफ से चलाई जा रही स्वास्थ्य बीमा, जीवन बीमा तथा अन्य

रिसर्च स्कॉलर, जर्मन अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 110067

योजनाओं से भी भारत सरकार बहुत कुछ सीख सकती है।

जर्मन समाज में महिलाओं की जितनी अच्छी स्थिति है वह हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति से बहुत बेहतर है। हालांकि वहां आज भी स्त्री और पुरुष को समान काम के लिए अलग अलग वेतन मिलता है। पुरुष महिलाओं की अपेक्षा ज्यादा वेतन पाते हैं जिसका काफी बार विरोध भी हो चुका है। सच कहिये तो आज का जो जर्मनी है उसको वहां की महिलाओं ने ही बनाया है, पुरुषों का योगदान उसमें बहुत कम है।

जर्मनी में बर्लिन, म्यूनिख, कोलोन जैसे कई बहुत खुबसूरत शहर हैं लेकिन वहां पर फेक टूरिज्म भी बहुत है, हालाकि यह पुरे यूरोप में देखने को मिलता है। हर शहर में दो चार मूर्तियाँ, एक नगर भवन और एक–आध पार्क मिलेंगे और उसको टूरिस्ट देखने पहुचेंगे, देखने के बाद कैसा लगा यह कोई किसी को नहीं बताता है। भारत आकर आप यह भी नहीं कह सकते कि यूरोप अच्छा नहीं था, लोग कहेंगे अरे यार तुमको जब यूरोप अच्छा नहीं लगा तो क्या अच्छा लगेगा। हमारे देश की तो बात ही अलग है, जो जगह देखने लायक है भी उसको ऐसा बना के रखा जाता है कि लोग उसे देखने न पहुंचे। कभी कभी पता चलता है की फलाने शहर के फलाने मूर्ति को चमकाया जा रहा है क्योंकि नेताओं को यह बहुत जल्दी पता लग जाता है की वह मूर्ति किस जाति के आदमी की है और इस काम से उनको कितने वोट मिल सकते हैं।

हालांकि जर्मन लोग हिटलर के बारे में बात करना पसंद नहीं करते, लेकिन मेरे कई जर्मन मित्र कहते हैं की इंडिया बीसवीं सदी का सबसे सौभाग्यशाली देश रहा जहाँ बीसवीं सदी के सबसे महान नेता और शायद पूरे आधुनिक विश्व के सबसे महान नेता गाँधी ने स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व किया और जर्मनी ठीक उसका उल्टा रहा जिसके लिए बीसवीं सदी सबसे ज्यादा त्रासदी भरी रही। मुझे दुःख तब होता है जब लोग गाँधी की प्रशंसा करते हुए उन्हें केवल भारत से जोड़ते हैं। वे इस बात को सामने कभी नहीं लाते कि गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी। इसके लिए उनको रेलगाड़ी से बाहर भी फेंका गया और इस तरह की कितनी यातनाएं सहनी पड़ीं. जिस साम्राज्य के खिलाफ गाँधी लड़ाई लड़ रहे थे उस अंग्रेजी साम्राज्य का उन्होंने मानवता के नाम पर युद्ध में साथ भी दिया।

गाँधी ने भारत को विदेशों में जो सम्मान दिलाया है वह शायद ही कोई दिला पाएगा। जर्मनी में उनके भक्त भी आपको मिल जाएंगे। कुछ तो यहाँ तक कहते हैं कि गाँधी को पढने के बाद उन्हें विश्वास नहीं होता की ऐसा कोई मनुष्य हो सकता है ! जिस राष्ट्र ने इतनी हिंसा देखी है और जो दो विश्व युद्धों का केंद्र रहा है वहां के लोगों को गाँधी की सबसे पहले जरुरत थी। काश गाँधी का लिखा ख़त हिटलर के पास पहुँच पाता जिसमें उन्होंने जर्मन तानाशाह को होलोकास्ट रोकने की नसीहत दी थी। मैं हमेशा यह सोचता हूँ कि गाँधी को जर्मनी से अच्छा और कौन समझ सकता है!

रिसर्च स्कॉलर, जर्मन अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली 110067

अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिये हमारे लड़के और लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ। मैं पाठ्य–पुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूंगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे–पीछे चली आयेंगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरन्त इलाज होना चाहिए।

–महात्मा गाँधी

lkn;'kkL= dh Hkkjrh; ijaijk

jk/kkoYyHk f=ikBh

कहा जाता है कि सौंदर्यशास्त्र नाम से भारतीय परंपरा में पृथक् से कोई शास्त्र नहीं है, जब कि पश्चिम में सौंदर्यशास्त्र पर प्रचुर चिंतन हुआ है। कतिपय पश्चिमी प्राच्यविद्याविशारदों ने तो भारत में सौंदर्यशास्त्र के अभाव के पीछे भारतीयों में सौंदर्यबोध के कथित अभाव को ही कारण मान लिया है। दूसरी ओर सौंदर्यतत्त्व पर पृथक् से विचार करने वाले आधुनिक भारतीय आचार्यों मे गोविंदचंद्र पांडे, हजारीप्रसाद द्विवेदी, सुरेंद्र बारलिंगे, नंददुलारे वाजपेयी ने सौंदर्यचिंतन के कथित अभाव को मिथ्यावाद ही माना है। नंददुलारे वाजपेयी ने नया साहित्य नये प्रश्न में हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स के लेखक बर्नार्ड बोसांके और वर्ल्ड ड्रामा के प्रणेता एलार्डिस निकाल की भारत में सौंदर्यशास्त्र की परंपरा के अभाव को ले कर की गई टिप्पणियों पर गंभीर आपत्ति जताई है।

हमारे यहाँ अलग से सौंदर्य का शास्त्र नहीं रहा – यह सत्य है। कदाचित् ऐसे किसी शास्त्र की अपेक्षा या आवश्यकता ही हमारे समाज में अनुभव नहीं की गई। जिस समाज के जीवन में हर स्तर पर सौंदर्य रचा बसा हो, सौंदर्य परमतत्त्व और समस्त सृष्टि में अविभाज्य या समवेत अंगीकार किया गया हो, वहाँ अलग से सौंदर्य पर चर्चा न की जाए – यह स्वाभाविक है। पृथक् से सौंदर्य पर विवेचन की आवश्यकता उन समाजों में अधिक अनुभव की जायेगी, जहाँ सौंदर्य को जीवन और सृष्टि से अलग कर के देखा गया हो। यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि पश्चिम की क्रिश्चियन परंपरा में माना गया कि सृष्टि का आरंभ ही पाप भावना या पाप बोध से हुआ है। इसके अनुसार मनुष्य मूलतः पाप से संपृक्त है। आद्य मानव के स्वर्ग से च्युत होने का कारण उसका पापबोध रहा है। उसके विपरीय भारतीय बोध ा सृष्टि को परमात्मा के द्वारा रची ऐसी कविता के रूप में देखता है, जो अजर अमर है। वैदिक ऋषि कहते हैं – 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।' यह वैदिक विश्वबोध ा ही है जिसके कारण भागवत आदि पुराण बार बार कहते हैं कि देवता इस धरती पर उतर कर यहाँ के रस और सौंदर्य का आनंद लेने के लिये लालायित रहते हैं। गोस्वामी श्याममनोहर कहते हैं – 'मानव स्वर्ग से अधःपतित हो कर धरती पर फैंक दिया गया – यह मान्यता हमारी नहीं, गोरे साहबों की है। हमने कभी भूतल को इसतरह धिक्कारा नहीं है।'

भारतीय सौंदर्यशास्त्र मनुष्य के स्वर्ग से इस धरती के पापलोक में पतन की कथा से नहीं उपजा, वह इस धरती के स्वर्ग को निहारने से जन्मा सौंदर्यशास्त्र है। दुष्यंत स्वर्ग से लौटते हुए कहता है – अहो उदारमणीया पृथ्वी – कितनी उदार और रमणीय है यह धरती।

कालिदास, भवभूति, बाण आदि सभी रचनाकार इस धरती पर स्वर्ग के रचे जाने की कथा कहते हैं स्वर्ग से गुम जाने की नहीं। रवींद्रनाथ सत्य कहते हैं कि यदि योरोप का कोई साहित्यकार शाकुंतल नाटक लिखता तो वह नाटक को ठीक उस स्थल पर समाप्त कर देता जहाँ, दुष्यंत से तिरस्कृत शकुंतला राजसभा में रोती बिलखती खधे रह गई है। कालिदास दुष्यंत और शकुंतला के पुनर्मिलन में धरती पर स्वर्ग फिर से रचते हैं। भवभूति इस जगत् के श्मशान की सारी भयावहता के बीच अपने प्रिय से विवाह करने के लिये घर से भाग आई मालती की कथा कहते हैं, वे मालती और माधव इन दोनों के द्वारा अपने अपने कुटुंब के लोगों की अनुपस्थिति में विवाह कर लेने की घटना पर मालतीमाधव को समाप्त नहीं कर देते, कापालिक अघोरघंट के मारे जाने पर भी उसक शिष्या कपालकुंडला के द्वारा मालती के पुनः अपहरण और उस दारुण घटना के बाद फिर मालती के माता पिता आदि के अपनी बेटी के साथ हुए हृदयसंवाद के साथ अपना प्रकरण पूरा करते हैं। भवभूति जिस समय उत्तररामचरित लिख रहे हैं, लगभग उसी समय महान् आचार्य और ध्वनिसिद्धांत के प्रणेता आनंदवर्धन कह रहे हैं कि रामायण में करुण रस है क्यों कि वहाँ राम और सीता का सदा सदा के लिये वियोग हो गया है। भवभूति इस आत्यंतिक वियोग को भी पलट देते हैं। यह पूर्णता की प्रत्यभिज्ञा इस नाट्यपरंपरा में रही है।

सौन्दर्यशास्त्र पर अलग से कोई ग्रन्थ प्राचीन परंपरा में नहीं मिलता। पर नाट्यशास्त्र, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अभिनवगुप्त का तन्त्रालोक और ईश्वरप्रत्यत्रिज्ञाविमर्शिनी आदि शैव दर्शन के अनेक ग्रन्थ, आगम साहित्य के अनेक प्रकरण, वात्स्यायन का कामसूत्र और उसकी परंपरा में विरचित अनेक ग्रंथ, अलङ्कारशास्त्र, शिल्पशास्त्र, चित्रसूत्र, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला व वास्तु के अनेक ग्रन्थ वस्तुतः भारतीय सौंदर्यशास्त्र के ग्रंथ हैं। राजानक रुय्यक का सहृदयलीला मुख्य रूप से सौन्दर्यतत्त्व का ही विमर्श प्रस्तुत करता है। ऐसा भी नहीं है कि सौंदर्य की चर्चा इन ग्रंथों में मात्र आनुषंगिक रूप से हुई हो। इन सभी ग्रंथों के शास्त्रकार एक मुख्य अवधारणा के रूप में सौंदर्यतत्त्व पर चर्चा करते हैं। सौंदर्य की विविध कोटियों –– शिल्प, कला, रूप, चारुता, विचित्रता, वक्रता, लालित्य, आभिजात्य, लावण्य, सौकुमार्य, मार्दव, रेखा, सौष्ठव, रमणीयता, शोभा, सौभाग्य, बन्ध, आस्वाद, चर्वणा, भूषण, वर्तना, भोग, भावना आदि के तारतमिक विवेक पर भी परंपरा में विचार

मिलता है। पूर्णता या अलंकार, आनन्द और रस भारतीय सौंदर्यशास्त्र के मुख्य बीजशब्द हैं। संकीर्णता से मुक्त हो कर पूर्णता को पाया जा सकता है। ईशावास्योपनिषत् में कहा गया है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।

इस जगती के भीतर जो जगत् है उसमें ईश्वर पिरोया हुआ है। यह ईश्वर आनंदरूप है। पर इसे हासिल त्याग से किया जा सकता है। त्याग कर के जो भोग उपलब्ध होता है उसमें ईश्वर है।

कलाशास्त्र में त्याग या व्यक्ति की सीमा से मुक्त हो कर अनंत से जुड़ना और उस जुड़ाव में भोग या आस्वाद के उस धरातल पर पहुँचना जिसे उपनिषत् भूमा या सीमातीत का धरातल कहते हैं भारतीय सौंदर्यशास्त्र का मुख्य विचार है।

गोस्वामी श्याममनोहर कहते हैं – "ब्रह्म ही इन अनेकविध रूपों को धारण कर जगदात्मना प्रकट हुआ है – तदात्मानं स्वयमकुरुत (तैत्ति.उप. 2/7)। अतः ये सभी रूप उस परमात्मा की सुकृति या सुन्दर कृति हैं, तथा यहाँ जो कुछ व्यक्त हुआ है, वह सुकृति ही है – तस्मात् तत् सुकृतमुच्यते, यद्वै तत् सुकृतम् (तैत्ति.उप. 2/7)। परमात्मा रसरूप है, अतः उसकी प्रत्येक कृति में एक विशिष्ट रस व्यक्त होता है। इस रस को जाने बिना इस सृष्टि में आनंद मिलने वाला नहीं। इस सृष्टि में प्रत्येक प्राणी में रहने वाली जिजीविषा जीवन के प्रति अदम्य लालसा इसी रस का रूप है। हम प्रत्येक साँस में आनन्द की रसानुभूति करते होते हैं, नहीं तो कोई निरर्थक साँस क्यों लेगा – कोह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाशे आनन्दो न स्यात् (तैत्ति.उप. 2/7)।"

ofnd lkn;'kkL=

ऋग्वेद में दीर्घतमस् ऋषि का अस्यवामीय सूक्त जीवन और सृष्टि के रहस्यों पर गहरे विचार का का प्राचीनतम और विशिष्ट उदाहरण है। इसके एक मंत्र में दो पक्षियों की चर्चा की गयी है। वे दोनों एक साथ एक वृक्ष पर बैठे हुए हैं। उनमें से एक पीपल का स्वादिष्ट फल खा रहा है, दूसरा कुछ भी न खाता हुआ केवल देख रहा है। दीर्घतमस् ऋषि ने अपनी इस उलटबासी में दो जीवन–दृष्टियों की बात सामने रखी है। एक उपभोक्तावादी जीवन दृष्टि है, जो संसार को भोग और क्रीडा की स्थली मानती है। दूसरी दृष्टि संसार के प्रवाह से अलग खड़े होने में है। यह अलग खड़ा होना संसार के विपर्यास और विसंगति के प्रति साक्षी बन कर रहना है। यह साक्ष्य अकर्मण्यता या निरीहता में पर्यवसित होने वाला नहीं है।

द्वा सुपर्णा या दो चिड़ियों के प्रतीकात्मक रूपक की दो अलग अलग व्याख्याएँ की जा सकती हैं – एक में दोनों पक्षी एक ही चेतना के दो रूप हैं – उन्हें जीव और आत्मा कह सकते हैं, मनुष्य और ईश्वर कह सकते हैं। दूसरे में वे दो विचारधाराओं और दो अलग अलग दृष्टियों के प्रतीक हैं। वैदिक देवताओ में इंद्र और वरुण को इन दो दृष्टियों का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। इंद्र अहिल्या का जार (यार) है। उसकी दृष्टि इंद्रियों के सुखों का उपभोग करने में, संसार में रमने में और रीझने में है। वरुण की दृष्टि साक्षीभाव की है। वरुण अपने लोक में विराजे हैं, लोगों के पापों और पुण्यों को देखते हैं। पर वे देखते ही नहीं, दिखाते भी हैं। उनका यह देखना अनुशासन के लिये है। वे नियामक देवता हैं। वरुण को ऋत या समस्त विश्व को परिचालित करने वाले सार्वभौम नियम का रक्षक कहा गया है।

ऊपर हमने कहा कि वैदिक विश्वबोध इस जगत् को परमात्मा की रची कविता के रूप में देखता है। सम्पूर्ण जगत् को परमात्मा का काव्य कहना काव्य की एक व्यापक अवधारणा है। ऋषि जब कहते हैं कि देवता काव्य से बढते हैं (स काव्येन ववृधे) तो काव्य का वह रूप उनकी दृष्टि में है, जो देवत्व को उपजाता और समृद्ध करता है।

एक ओर कविकर्म चेतना के गहरे स्तरों से उन्मिषित होता है। दूसरी ओर इसका स्थूल स्तर है, जिसमें शब्द उसी तरह विन्यस्त होते हैं, जिस तरह वस्त्र में तन्तुओं की बुनावट या रथ में उसके अवयवों के संश्लिष्ट होना। अतः अपने मन्त्रों के लिये ऋषि ने कहा है –

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व
या ते शविष्ठा नव्या अकर्मा।
वस्त्रेण भद्रा सुकृता वसूयू
रथं न धीरा स्वपा अतक्षम्। (ऋ. 5/19/15)

यदि यह जगत् परमात्मा के द्वारा रची कविता है, तो इस कविता को कवि या कलाकार अपनी कृति में नये सिरे से रचता, कहता और प्रस्तुत करता है। ऐतरेय महीदास इस दृष्टि से समस्त कलाओं या शिल्पों को दो प्रकार का मानते हैं – देवशिल्प और मानुष शिल्प। देवशिल्प की ही अनुकृति मानुष शिल्प है। इस संसार के नाना पदार्थ देवताओं के शिल्प हैं। उनकी अनुकृति में मनुष्य अपना शिल्प, कला या कविता रचता है।

एतेषां देवशिल्पानामनुकृतीह शिल्पमधिगम्यते। हस्ती, कंसो वासो हिरण्यम्, अश्वतरी रथः।
(ऐतरेयब्रा. 30/1, भाग–3, पृ. 131)।

अनुकृति शब्द का प्रयोग ऐतरेय ने सोमयाग के वर्णन में सोमक्रय के प्रसंग मे भी किया है (तामनुकृतिं .... वत्सतरीमाजन्ति सोमक्रयणीम् – ऐतरेयब्रा. 1/5)। यद्यपि षड्गुरुशिष्य ने यहाँ अनुकृति का अर्थ कृतिम् अनु तदनुसारेण लिया है)। देव अथवा परमात्मा के शिल्परूप इस जगत् में त्रिलोकी समाहित है। उसी तरह इस देवशिल्प की अनुकृति में मनुष्य जो शिल्प रचता है उसमें समस्त ललित, रूपंकर तथा प्रदर्शकारी कलाएँ समाहित हो जाती हैं। परमात्मा

आत्मविस्तृति या अपनी लीला के विस्तार के लिये जगत् रूपी शिल्प को रचता है, तो मनुष्य आत्मसंस्कृति के लिये मानुष शिल्प रचता है। ऐतरेय महीदास पहले भारतीय विचारक हैं, जिन्होंने कला या शिल्प की अवधारणा से जोड़ कर संस्कृति की अवधारणा प्रस्तुत की है।

आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि। छन्दोमयं वा। एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते। (ऐतरेयब्रा. 6/27)।

(ऐतरेयब्रा. 30/1, भाग–3, पृ0 132)।

यहाँ छन्दस् या काव्य को भी शिल्प कहा गया है। इस तरह कविता कवयिता तथा भावक दोनों का संस्कार करती है – यह मन्तव्य यहाँ स्पष्ट है। अन्यत्र भी ऐतरेय ने कहा है कि स्तोता स्तुति के द्वारा अपने को संस्कारित करता है –

स्तोत्रियं शंसति। आत्मा वै स्तोत्रियः। तं मध्यमया वाचा शंसति। आत्मानमेव तत् संस्कुरुते।

(ऐतरेयब्रा0 13।12, पृ0 512)

कौषीतकि ब्राह्मण में नृत्य, गीत तथा वादित्र को भी शिल्प के रूप में परिभाषित किया गया है –

त्रिवृद् वै शिल्पम् – नृत्यं गीतं वादितमिति। (कौ. ब्रा. 29/5)

छन्द को भी ऐतरेय ने शिल्प कहा है। अत एव कविकर्म भी शिल्प है। जिस तरह प्रत्येक शिल्प आत्मसंस्कृति है, वह शिल्पकर्ता और शिल्प के भावक को संस्कारित करता है, उसी तरह कविकर्म भी कवि और भावक दोनों को पावन बनाता है। छन्द मुक्ति देते हैं, पाप के पंक से मनुष्य को उबार लेते हैं। वे पाप से बचाये रखने के लिये हमारे आच्छादक या रक्षाकवच बन जाते हैं। सायण ने ऋग्वेद के 1.1. की प्रस्तावना में कहा है –

पुरुषस्य पापसम्बन्धं वारयितुमाच्छादकत्वात् छन्द इत्युच्यते। तच्चारण्यकाण्डे समाम्नायते – छादयन्ति हि वा एवं छन्दांसि पापात् कर्मणः (ऐ.आ. 2/5)। अथवा चीयमानाग्निसन्तापस्याच्छादकत्वाच्छन्दः। तच्च तैत्तिरीया आममन्ति – ष्रजापतिरग्निमचिनुत, स क्षुरपविर्भूत्वाऽतिष्ठत्तं देवा बिभ्यतो नोपायन्ते छन्दोभिरात्मानं छादयित्वोपायन्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्। (तैत्ति.सं. 5/6/6/) यद् वा अपमृत्युं वारयितुमाच्छादयतीति छन्दः। तदपि छान्दोह्योपनिषद्याम्नातं – "देवा वै मृत्यौर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते छन्दोभिरात्मानमाच्छादयन् यदेभिरच्छादयंतच्छन्दसां छन्दस्त्वम्" (छा.उ. 14/2)। (ऋग्वेद, सायणभाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1933, प्रथम खण्ड, पृ. 32)

वस्तुतः छन्द में देवता रमते हैं। यही छन्द का अलंकार है। ऋषि इन्द्र से पूछते हैं –

इन्द्र का ते अस्ति अरङ्कृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम? (ऋ. 7.29.3)

अथर्ववेद (14/1/7) में सूर्या के विवाह के प्रसंग में कहा गया है कि गाथाओं उसे अलंकृत करती हैं। यह शिल्प और काव्य का जीवन से अन्तःसम्बन्ध मात्र नहीं, यह शिल्प का जीवनय या प्राणमय होना है।

सूक्त या छन्द इन्द्र का अलंकार बन जाते हैं। अलंकार और अलंकार्य मे भी यहाँ विभाजन सम्भव नहीं, अतः छन्द ही दिव्य रूप धारण करता है, उसी में देवता का वास है – यह भी कहा जा सकता है। उपर्युक्त प्रसंग में सायण ने देव शब्द की जो व्याख्या की है, वह इसी दृष्टि से अवगन्तव्य है। "दीव्यते इति देवः मन्त्रेण द्योतते" – जो मन्त्रसे आभासित या आलोकित होता है वह देवता है।

(ऋग्वेद, सायणभाष्य, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1933, प्रथम खण्ड, पृ. 32)

छन्द की उत्पत्ति परम पुरुष से हुई – छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।

अथर्ववेद में कहा गया है – "पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव, विश्वैर्विश्वाङ्गै सह सम्भवेम।" (अथर्ववेद 12/3/10)।

यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मण से ऊपर दिये गये उद्धरण के उत्तरार्ध में महीदास ने जो उदाहरण शिल्प के दिये हैं, वे सब केवल रूपंकर कलाओं के है, पर आगे वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि देवशिल्प और मानुषशिल्प के रूप में द्विविध शिल्प की उनकी अवधारणा वस्तुतः तकनीकी या रूपंकर कलाओं पर ही नहीं, ललित व प्रदर्शनकारी कलाओं के लिये भी है। अत एव गीत का प्रतिपादन करते हुए गीत के भी ये दोनों प्रकार वे बतलाते हैं – दैव गीत और मानुष गीत। दैव गीत ऋक् है, मानुष गीत गाथा है (ऐत.ब्रा. 7/8)। कविता और कला अथवा व्यापक अर्थ में शिल्प के दैव और मानुष के रूप में ये दो प्रकार काव्यरचना या कलासर्जना की प्रक्रिया को भी इंगित करते हैं। दैव गीत या ऋक् ईश्वर की कृति है, जिसे ऋषि साक्षात्कार में देखता है, मानुष गीत सायास रची हुई कृति है।

जिस तरह वैदिक ऋषि समस्त सृष्टि को परमात्मा के काव्य के रूप में अनुभव करता है, उसी तरह ऐतरेय समस्त सृष्टि को शिल्प के रूप में देखते हैं। काल की गति में शिल्प है, नृत्य में लय व गति है इसलिये नृत्य भी शिल्प है, दिन और आवर्तन और और परावर्तन में गति करते हैं, इसलिये ऐतरेय दिन और रात के आने और जाने में नृत्य देखते हैं –

अहश्च रात्रिश्च कृष्महरर्जुनं चेत्याविनमारुतस्य प्रतिपदहश्चाहश्चेति पुनरवृत्तं पुनर्निनृत्तम्। (ऐतरेय ब्रा. 5/15)

शिल्प की यह व्यापक अवधारणा तथा जगत् का परमात्मा के शिल्प के रूप मे दर्शन इस परम्परा में आगे की सहस्राब्दियों में अव्याहत बना हुआ है। महाभारत में कहा गया है –

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पानि कर्म च।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात्।।

इसी क्रम में ऐतरेय ब्राह्मण में शिल्पसम्बन्धी सूक्तों का भी विवरण दिया गया है, जिनका षडह के दिन पाठ किया जाता था (शिल्पानि शंसन्ति – ऐ.ब्रा. 6/27) ।

कथासरित्सागर में तो दिव्यशिल्प और मानुषशिल्प की ऐतरेय की अवधारणा को नायिका से सौन्दर्यवर्णन में यथावत् दोहरा सा दिया है–

ते तन्निरूप्य जगदुर्नेदृशो देव शक्यते
अपरः कर्तुमेतद्धि दिव्यं शिल्पं न मानुषम्।। (कथासरित्सागर, 25/1/75)

ऐतरेय महीदास के कलासर्जनाविषयक चिन्तन में सबसे महत्त्वपूर्ण कथ्य है उनके द्वारा शिल्प व आत्मसंस्कृति को अभिन्न बताना। अर्थात् कला या शिल्प को रचना आत्मसंस्कार करना ही है। हमारे समय में मार्क्स एक सर्वथा भिन्न परिप्रेक्ष्य में ही सही, प्रकारान्तर से ऐतरेय की बात को दोहराते हैं। वे कहते हैं कि कारीगर या शिल्पी अपने ओजारों से रचना करता हुआ दुनिया को भी बदलता है और उसके साथ अपने आप को भी बदलता है। "इस प्रकार बाह्य जगत् में काम करते हुए उसके अपने स्वभाव में भी परिवर्तन होता है, वह अपनी सोची हुई शक्तियों का विकास करता है और अपनी अभिरुचि के अनुरूप ही उन्हें काम करने को बाध्य करता है।" (मार्क्स : केपिटल, खण्ड–1, मस्को 1985, पृ. 177–78)।

शिल्प की जो विवृति ऐतरेय ने की, उसका अवबोध ा परम्परा में निरन्तर और अव्याहत बना रहा। इसीलिये अभिनवगुप्त तन्त्रालोक में कहते हैं कि इस सारे दर्शन व अनुष्ठान का मूल ऐतरेय ब्राह्मण में है। इसके साथ ही वायुपुराण में यह भी कहा गया कि शैवागमों का मूल ईश व श्वेताश्वतर उपनिषद् हैं।

शिल्प सृष्टि का यज्ञ है। जीवन में ओतप्रोत है। वह प्राण है, तृतीय सवन है। कौषी. ब्राह्मण और शांखा.ब्रा. में ये विचार बार बार दोहराये गये हैं। प्राण के बिना आत्मा नहीं उसी प्रकार शिल्प के बिना मनुष्य का आत्मा नहीं। इसलिये प्रत्येक यज्ञ में शिल्प का शंसन अनिवार्य है। पृष्ठ्य या सामगायन की विधि में शिल्प है।

प्राणास्तानि शिल्पानि, पुरुषो वै यज्ञस्तस्य य ऊर्ध्वाः प्राणास्तत् प्रातः सवनमात्मा माध्यन्दिनो ये वाञ्चस्त तृतीयं तानि शिल्पानि तस्मात् तृतीये सवने शिल्पानि क्रियन्त एतद्धयेषाममायतनमथ । कौषी. ब्राह्मण 25/12, शांखा.ब्रा. 25/12

आत्मा वै पृष्ठ्यानि प्राणाः, शिल्पानि न वाऽन्तरेणऽऽत्मानो एतन्नाना तस्मादग्निष्टोम एवापि विश्विजिति माध्यन्दिने शिल्पानि शस्यन्ते नेतत्प्राणेभ्य आत्मानमपाधानीत्ययो प्रजापतिर्वै विश्वजित् सर्वं वे प्रजापतिर्विश्वजितस्तस्मात् सर्वाणि पृष्ठ्यानि क्रियन्ते सर्वाणि शिल्पानि। कौषी. ब्राह्मण 25/12, शांखा.ब्रा. 25/12

मन्त्र यज्ञ में अन्न हैं, तो शिल्प प्राण हैं। न्यङ्खोऽन्नं प्राणाः शिल्पानि प्राणेष्वेव तत्प्राणं दधात। कौषी. ब्राह्मण 25/13, शांखा.ब्रा. 25/13

कौषीतकि दिक्काल को शिल्प में प्रतिष्ठित करता है। अन्तरिक्ष किस पर टिका हुआ है? यदि शिल्प न हो तो अन्तरिक्ष टिका नहीं रह सकता –

अथो अन्तरिक्षे वा एष मध्यमस्त्यर्हः, अनारम्भणं वा इदमन्तरिक्षम् प्रतिष्ठानम्। शिल्पेष्वेव तदहरहः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति। (कौ.ब्रा. 29/5)

नृत्त गीत और वादित्र को कौषीतकि शिल्प कहता ही है, अन्यत्र ऋचाओं का साम के रूप में गायन भी शिल्प है। यही शिल्प यज्ञ है।

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थिते वामारमे ते मा पातमास्य यज्ञस्य वृचः। शर्मांसि शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु मा हिंसीः।
तै.सं. 1/2/2/1, 6/1.ऍ/3, मैत्रा.सं. 1/2/2, काठकसं. 2/5

निरुक्त (6/11) ने पेश का अर्थ रूप किया है (पेश इति रूपनाम)। स्वयं ऋषियों ने भी पेश का सम्बन्ध रूप से माना है। पेश की क्रिया रूप को जन्म देती है – त्वष्टा के लिये कहा गया है – य इमे द्यावा पृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा. (10.3.9)

शिल्प से अनुषक्त अवधारणा रूप की है। रूप का कलाकृति के स्दर्भ उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है। रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव (6/47/18) तथा इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते (6/47/18)

यद्वै प्रतिरूपं तच्छिल्पम् (शतपथ 1/5/8)।

ऐतरेय महीदास ने कवि को अनूचान के अर्थ में लिया है – (ये वा अनूचानास्ते कवयः – ऐतरेयब्रा.– 2/65, पृ. 216)। काव्यरचना या कलासर्जना की प्रक्रिया में चेतना के वे तीन स्तर इंगित करते हैं – सरस्वती, इला तथा भारती। वाक् राष्ट्री या ईश्वरी है (वाग्वै राष्ट्री – वही, 1/4, पृ. 121)। वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य ने यहाँ राष्ट्री का अर्थ ईश्वरी किया है। ये तीनों देवियों प्राणस्वरूपा हैं, इनके द्वारा यजमान त्वष्टा का यजन करता है। वस्तुतः वाक् ही त्वष्टा है. इस सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने के कारण इसे त्वष्टा कहा जाता है –

त्वष्टारं यजति। वाग्वै त्वष्टा। वाग्घीदं सर्वं ताष्टीव।। (ऐतरेयब्रा.– 4/6, पृ. 228) षड्गुरुशिष्य ने ताष्टि का अर्थ "प्रकाशयति" किया है। ऐतरेय प्रजापति की सृष्टिप्रक्रिया के रूपक के द्वारा भी कलासर्जना प्रक्रिया की ओर इंगित करते हैं। तदनुसार प्रजापति ने तप किया, और तप के द्वारा वाक्

की प्राप्ति की। वाक् से उन्होने समस्त जगत् को रचा – (ऐतरेब्रा. 1/10. पृ. 367–68)।

सृष्टि के यज्ञ में सूक्तों या छन्दस् को पशु बना कर बलि स्वरूप अर्पित किया जाता है उसी से यजमान या सर्जक इसा लोक में स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है –

मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते, त्रैष्टुभानि च जागतानि च, मिथुनं वै पशवः पशवश्छन्दांसि पशूनामवरुद्ध्यै। (ऐतरेयब्रा. 18।7, भाग–2, पृ. 95)।

ऐतरेय वाणी को समुद्र के समान बताते हैं, जिस तरह समुद्र कभी क्षीण नहीं होता, उसी तरह वाक् भी कभी क्षीण नहीं होती –

वाग्वै समुद्रः। न वै वाक् क्षीयते। न समुद्रः क्षीयते। (ऐतरेयब्रा. 23/1, भाग–2, पृ. 227)।

वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य के अनुसार वै यहाँ इवार्थक है।

इस छन्दस् या वाक् में रस होता है। छन्दस् के रस का प्रतिपादन भी ऐतरेय ने इतिहास के आख्यान के माध्यम से किया है। छन्दस् में जो रस था, वह विगलित होने लहगा, जिससे प्रजापति भयभीत हुए कि इस तरह तो छन्दस् का रस लोक से अतिक्रान्त हो जायेगा। तब उन्होने छन्दस् के उस रस को नारांशंसी तथा गायत्री के द्वारा बाँध लिया।

छन्दसां वै षष्ठैनाह्नाप्तानां रसोऽत्यनेदत्। स प्रजापतिरबिभेत्। पराङयं छन्दसां रसो लोकानत्येष्यतीति। तं परस्ताच्छन्दोभिः पर्यगृह्णात्। नाराशंस्या गायत्र्याः। रैभ्या त्रिष्टुभः। पारिक्षित्या जगत्याः। कारव्यानुष्टपभः। तत् पुनः छन्दःसु रसमदधात्। सरसैर्हास्य छन्दोभिरिष्टं भवति। सरसैश्छन्दोभिर्यज्ञं तनुते य एवं वेद।

(ऐतरेयब्रा. 30/6, भाग–3, पृ. 155–59)।

शिल्प तथा पेशस् दोनों शब्दों को विश्वम्भर शरण पाठक तथा मेयरहॉफर जैसे विद्वानों ने एक ही धातु पिश से व्युत्पन्न माना है। पेशस्, सुपेशस्, पिंश और पेशल शब्दों प्रयोग मनोहारी शिल्प रचना के अर्थ में ऋग्वेद तथा अन्यत्र किया गया है। पेश के कर्म के द्वारा सृष्टि स्थिर बनती है।

येभिः शिल्पैः प्रपथानामजृंहत्, येभिर्द्यामध्यपिंशत्, प्रजापतिर्यैभिर्वाचं विश्वरूपां समव्ययत्, येभिरादित्यस्तपति प्रकेतुभिः, येभिः सूर्यो ददृशे चित्रभानुः. – (ताण्ड्य ब्रा. 2/7/15/3)

संहिताओं तथा ब्राह्मणों में काव्य, छन्दस्, शिल्प, रूप और रस ये शब्द पारस्परिकता में प्रयुक्त हुए हैं। पेशस्, चारु, चित्र, श्रीः, शोभा आदि इनके विशेषण के रूप में बार बार आते हैं, जिससे शिल्प को केन्द्र में रख कर वैदिक सौन्दर्यशास्त्र की एक सर्वांगीण अवधारणा निर्मित होती है।

इन्द्र के अतिरिक्त त्वष्टा दूसरे देवता हैं, जो रूप की रचना करने में समर्थ हैं – त्वष्टा रूपाणि वै प्रभुः (ऋ. 1/188/9) यह रूप सुपेशस् सुपिश हुआ करता है। पिंश धातु से बने इन शब्दों का प्रयोग रूप की मनोहारिता द्योतित करने के लिये किया गया है।

रूपैरपिंशत् – रूपों से सुशोभित किया (ऋ. 10/110.9)

सायण ने इसका अर्थ किया है – रूपवत्यौ अकरोत् (पृथ्वी और आकाश को सुन्दर बनाया) ।

निश्चर्मण गामपिंशत् – ऋ. 1.110.8) बिना चमड़े की गाय को सुशोभित बना दिया।

नक्षत्रेभिः द्यामपिंशत् – नक्षत्रों से आकाश को सजा दिया ऋ. 10.68.11)

पिशा इव सपिशः – ऑ. 1.64.8)

पेशस् जरीदार कपड़ा भी हो सकता है। चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा – (ऋ. 10.114.3) में चार चोटियाँ गूँथे जरी के वस्त्र पहने युवती की छवि है। पर पेशस् शब्द सर्वत्र वस्त्र के अर्थ मे नहीं आता, सुन्दर बनावट वाली वस्तु के विशेषण के रूप में आता है। अतः घर के लिये कहा – सुपेशसं अस्तम् – घर की बनावट सुन्दर है। (ऋ. 5/30/130

मरुद्गणों के लिये कहा गया है – सुसदृशः सुपेशसः – एक जैसे दिखाई पड़ते हैं और सुन्दर रूप वाले हैं।

अधि पेशांसि वपते नृतूः ऋ0 1.92.4 उषा सुन्दर वस्त्र धारण करती है।

चित्र दूसरा शब्द है। यह सुन्दर के अर्थ में प्रयुक्त है। अग्नि के लिये कहा गया है – चित्रश्रवस्तमः। अग्नि के लिये ही फिर कहा है चित्रो विभाति। रथं न चित्रम् – व रथ के समान सुन्दर है (ऋ. 3/2.5)

सुन्दरतम के लिये चित्रतम शब्द का प्रयोग ऋषि करते हैं – चित्रतमं वपुः (4/23/6)।

चित्र रचना के विशिष्ट विन्यास के द्वारा लाये जाने वे सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त हुआ है। अच्छे घर के लिये कहा गया है – परिष्कृतं देवमानेन चित्रम् (ऋ. 10.107.10) घर देवताओं के मन्दिर के समान सुन्दर है।

अन्य शब्द है चारु । रुद्र को चारुचित्र कहा गया है।

शुभ धातु से निर्मित शोभा जैसे पदों का भी प्रयोग कलाकृति के लिये किया गया है। गिर शुम्भन्ति अत्रयः। मरुद्गण अलंकारों के कारण शोभायमनान है शुभा शोभिष्ठाः (7/56/50/बभ्रू यामेषु शोभते – इन्द्र के घोड़े अपने मार्गों पर शोभित हैं – 7/32/23)। रुच धातु से निर्मित शब्दावली डी रुचिकर अर्थ को व्यक्त करने लिये प्रयुक्त की गई है। पविभिः रुचानः – (7/69/1)। कविशस्तः सुदानुः रोचते – (3/29/7)। राम्या उषसः अनु स इधान – रमणीय उषा के पश्चात् वह अग्नि आदित्य की तरह प्रकाशित होता है।

श्री की अवधारणा समग्रता और वैभव को व्यक्त

करती है। अग्नि शोभा को धारण करता है – श्रियं वसानः – (2/10/1)। तथा – विश्वाः श्रियः अधिदधे – (2/8/5)

अलंकारों से देह जगमग करती है। मरुत्गण रुक्मवक्षसः हैं। 2/34/2)।

द्यावापृथिवी परिभूषति – (8/22/50। अश्विनी द्वय का रथ धरती और आकाश को अलंकृत करता है।

धातुओं को घिस कर रगड़ कर चिकना बना कर आकृतियाँ बनाईं जाती थीं। इसलिये लोहे के पुर बनने की भी बात आती है – अधृष्टा आयसीः पुरः कृणुध्वम्– 10.101. 8)।

okRL;k;u dk lkn;:foe'k

अलंकार सौंदर्य की समग्रता है। अलंकार का अर्थ जीवन की समग्रता का सौंदर्य है। गोस्वामी श्याम मोहर कहते हैं – "भारतीयता ने कभी भी मनुष्य–जीवन को एकांगी दृष्टिकोण से नहीं देखा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को पुरुषार्थ के रूप में मान्य करने वाली हमारी संस्कृति में इस तथ्य को समझा जा सकता है। ऋषि–मुनियों ने वन में रहकर ही धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र की तरह अर्थशास्त्र और कामशास्त्र का भी चिन्तन और निरूपण किया है। ऋषियों ने "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" का सिद्धान्त भलीभाँति जाना माना था और उसका तत्त्वानुध्यान और रसावगाहन भी किया था। ऋषियों के लिये धर्म कोई थोथी पूजा प्रणाली नहीं थी। अत एव गीता में भगवान् को यह कहने में किसी तरह का संकोच अनुभूत नहीं होता कि– धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि (7/11)।"

वात्स्यायन का काम से आशय जीवन के सर्वांगीण रूप से सुन्दर बनाने वाले सारे तत्त्वों के समुच्चय से है, तदनुरूप एक आचारसंहिता भी वात्स्यायन प्रतिपादित करते हैं। कासू. के दूसरे अध्येताओं ने इसे हिन्दुओं का शृंगारित प्रेम का पाठ्यग्रन्थ (Hindu text book of erotic love) कहा है। यह कथन नितांत अनुचित है। कासू. एक सार्वलौकिक शास्त्रीय ग्रन्थ है, इसे किसी समाज विशेष से जोड़ कर देखना ठीक नहीं।

काम का मूल अर्थ संकल्प है। अपने बृहत्तर अर्थ में संकल्प जीवन को परिपूर्ण बनाने के लिये है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त तथा बृहदारण्यक (1/4/1/3) आदि उपनिषदों में काम इसी बृहत्तर अर्थ में सृष्टि के मूल तत्त्व के रूप में प्रतिपादित है। अपने सीमित अर्थ में भी काम को इसी बृहत्तर अभिप्राय से संवलित होना चाहिये। काम जीवन का उत्सव है, यौन संसर्ग उसका एक पक्ष है। नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने चारों वेदों को नाट्य का स्रोत बताते हुए कहा है कि नाट्य की रचना के लिये ब्रह्मा ने अथर्ववेद से रस लिया। अथर्ववेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनका प्रतिपाद्य सीधे सीधे वात्स्यायन की कृति में प्रतिफलित हुआ है।

वात्स्यायन में यह समग्र दृष्टि पुरुषार्थों के समन्वय से बनती है। अर्थ, काम और धर्म – ये जीवन के पुरुषार्थ हैं। ये जीवन के तीन स्तरों पर हासिल होते हैं – आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। तीनों पुरुषार्थ परस्पर अन्तर्निर्भर हैं, ये जीवन में सत्य, सुन्दर और शिव को मूर्त करते हैं। व्यक्ति का जीवन, समाज का जीवन और राष्ट्र का जीवन ये भी उसी तरह परस्पर अनुषक्त हैं।

कासू. का पहला ही सूत्र है – धर्मार्थकामेभ्यो नमः। वात्स्यायन जीवन के पुरुषार्थ को नमन करते हैं। काम का सम्बन्ध एषणा या प्रवृत्ति से है, निवृत्ति से वह सम्बद्ध नहीं सकता। इसलिये तीन पुरुषार्थों को ही वात्स्यायन ने नमन किया है। पर मोक्ष को वे अस्वीकार करते हों – ऐसा भी नहीं है। अन्यत्र उन्होंने मोक्ष की पुरुषार्थ के रूप में चर्चा की है।

प्रवृत्तिमूलकता कर्म की अपेक्षा रखती है, कर्म पुरुषार्थसिद्धि का पथ प्रशस्त करता है। इसलिये वात्स्यायन जिस तरह निवृत्ति का निषेध करते हैं, उसी तरह वे लोकायतिकों के साथ नियतिवादियों के पूर्वपक्ष का भी खण्डन करते हैं।

प्रत्येक जीवधारी में विद्यमान यह काम भी ईश्वर का ही रूप है। अतः वात्स्यायन, कालिदास, भारवि आदि कवि पुरुषार्थ के जिस स्वरूप का प्रत्यय देते हैं, उसमें अर्थ और काम भी धर्मरूप ही हो जाते हैं। कालिदास अपने नायक के विषय में कहते हैं –

अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।

जीवन में प्रेम के अनुभव की सर्वांगीण अभिव्यक्ति तभी हो सकती है जब प्रेमी जन कलाओं का अभ्यास कर के उनमें प्रवीण हों।

वात्स्यायन के द्वारा उल्लिखित चतुःषष्टि कलाओं में अनेक कलाएँ सौन्दर्यशास्त्र से सम्बन्धित हैं। गीत, वाद्य, नृत्य उदकवाद्य, वीणाडमरुकवाद्य, नाटकाख्यायिकादर्शन– ये प्रदर्शनकारी कलाओं के अन्तर्गत हैं, तो आलेख्य, विशेषेकच्छेद्य, तण्डुलकुसुमबलिविकार, पुष्पास्तरण, दशनवसनाङ्गराग, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचन, चित्रयोग, माल्यग्रथनविकल्प, शेखरकापीडयोजन, नेपथ्यप्रयोग, कर्णपत्रभङ्ग, गन्धयुक्ति, भूषणयोजन, इन्द्रजाल, पट्टिकावानवेत्रविकल्प, तक्षककर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रूप्यपरीक्षा, धातुवाद, मणिरागाकरज्ञान आदि ललितकलाओं तथा शिल्प से सम्बन्धित हैं। प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोग, पुस्तकवाचन, काव्यसमस्यापूरण, अक्षरमुष्टिका आदि साहित्य से सम्बन्ध रखती हैं। उस काल की साहित्यिक या कलात्मक प्रवृत्तियों का भी इनसे परिचय प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये – यशोधर ने अक्षरमुष्टिका (क्र. 45) पर विस्तार से विचार किया है। यह कूटकाव्य का एक प्रकार है। कविता में अक्षरों का मुष्टि बन जाना अक्षरमुष्टिका है। यह दो प्रकार की होती है – साभासा और निराभासा। पहली में कूट या

पहेली के समाधान का संकेट भी उसी वाक्य में दिया होता है, दूसरी में यह संकेत अनुपस्थित होता है। साभासा अक्षरमुष्टिका के उदाहरण में यशोधर ने आचार्य रविगुप्त के चन्द्रप्रभाविजयकाव्य से यह उदाहरण दिया है –

मेवृकसिंकतुवृधमकुंमी मूधसबांसुशकनिधकाव्याः।
फाचौवैज्येआश्राभाआकामाफौफा चौव।।

प्रथम पाद में राशियों का व दूसरे पाद में महीनों का परिगणन किया गया है।

छलितकयोगाः (सं. 57) का सीधा सम्बन्ध नाट्यविधा से है। यशोधर ने इसका लक्षण देते हुए कहा है –

यद् रूपमन्यरूपेण सम्प्रकाश्य हि वञ्चनम्।
देवेतरप्रयोगाभ्यां ज्ञेयं तच्छलितं यथा।

देश के अनेक अंचलों में बहुरूपिया नाम से नाट्यरूप इसी का परम्परा में आता है।

कालिदास के कुमारसम्भव में बटुवेशधारी शिव तपोनिरत पार्वती से कहते हैं – यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः– रूप पाप के लिये नहीं हो सकता। पार्वती का रूप तभी शिव के सान्निध्य में सार्थक होता है। वात्स्यायन के प्रस्थान में काम का सम्बन्ध भी शिवत्व से है। अगम्याप्रकरण में वे किन किन स्त्रियों से कामसम्बन्ध वर्जित है यह प्रतिपादित करते हैं। पारदारिक प्रकरण में वात्स्यायन ने राजाओं , मन्त्रियों आदि के लिये स्पष्ट निर्देश दिया है कि वे भूल कर भी पारदारिक के प्रपंच में न पड़ें। पारदारिक के योग तो असंख्य हैं, राजा व सामन्त उनका प्रयोग भी करते रहे हैं। पर लोक का हित करने की इच्छा वाला राजा इनका प्रयोग न करे। उसे तो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है, तभी वह धरती पर विजय पा सकेगा।

फिर प्रश्न आता है कि वात्स्यायन ने ये योग बताये क्यों हैं? इसके उत्तर में बार बार वात्स्यायन ने यही बात कही है कि शास्त्र के अधिकार के अन्तर्गत ये योग बताये गये हैं। यह शास्त्र की शंसन विधि है, यह अनुशंसा नहीं है। शास्त्र में जो जो शंसन है, वह सब प्रयोग में भी अपनाया जाय, तो अनर्थ हो जायेगा। शास्त्रार्थ व्यापक हैं, और प्रयोग एकदेशिक। आयुर्वेद में कुत्ते के मांस के भी गुण बताये जाते हैं, पर इससे वह शिष्ट जनों के लिये खाद्य नहीं हो जाता।

वात्स्यायन अन्त में यहाँ तक कहते हैं कि उन्होने स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन कर के समाधि की स्थिति में यह शास्त्र लिखा है, इसका प्रयोजन राग या वासना को बढाना नहीं है बल्कि उसे नियन्त्रित करना है। इस शास्त्र को पढ कर व्यक्ति जितेन्द्रिय हो सकता है।

यह विरोधाभास लग सकता है कि जो वास्त्यायन काम को जीवन का मूल स्वीकार करते हैं, वे ही उस शास्त्र को भी स्वीकार कर रहे हैं, जिसमें काम की गणना अरिषड्वर्ग में की गई हे। धर्माविरुद्ध काम जीवन में इष्ट है, वही धर्मविरुद्ध हो तो अनिष्ट हो जाता है।

वात्स्यायन के स्त्री विमर्श में सुन्दर को शिव और सत्य से जोड़ने का उनका उपक्रम स्पष्ट प्रतिफलित हुआ है। यह सत्य है कि सारे शास्त्र पुरुषवादी दृष्टि से लिखे गये हैं। पर इन शास्त्रकारों में वात्स्यायन ने नारी मन को जितनी सहानुभूति से परखा है, वह केवल कालिदास, बाण, भवभूति जैसे इने गिने कवियों में ही मिलती है। यह स्वाभाविक ही है कि स्त्री के विषय में कहे गये उनके वचनों या निर्देशों की अनुगूँज इन कवियों में सुन पाये। उदाहरण के लिये –

कुसुमसधर्माणि हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः। तास्त्वनधिगतविश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणाः सम्प्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति। तस्मात् साम्नैवोपचरेत्।। (कासू. 3/2/6)

(स्त्रियाँ फूल की रह कोमल होती हैं। उन्हें बिना विश्वास में लिये जोर जबरजस्ती करने पर वे हमेशा के लिये पुरुष संसर्ग से विमुख हो सकती हैं। इसलिए स्त्री के प्रति साम के साथ उपचार किया जाना चाहिये।

वात्स्यायन स्त्री और पुरुष में परस्पर विश्वास, प्रेम और सौहार्द को परम काम्य मानते हैं। स्त्री पुरुष के बीच सख्य या बान्धव भाव के सम्बन्ध को भी वात्स्यायन, कालिदास, बाण और भवभूति ने जिस तरह समझा है, वह हमारी शास्त्रपरम्परा और काव्यपरम्परा दोनों में अन्यत्र दुर्लभ है। स्त्री–पुरुष के बीच निर्विकार सौहार्द्र के सम्बन्ध को वात्स्यायन ने योषिन्मैत्री नाम दिया है।

उनके विवाह के निरूपण में धर्मशास्त्र के दृष्टिकोण से इसीलिये भेद है। जो कन्या से अनुरक्त हो उसी वर को वरीयता दी जानी चाहिये। इसी लिये वात्स्यायन कहते हैं कि भले ही धर्मशास्त्र की दृष्टि से गान्धर्व विवाह का स्थान नीचे हो, सुखकारक, क्लेशरहित और अनुरागात्मक होने के कारण सारे विवाहों में गान्धर्व को प्रवर माना जामना चाहिये।13 वे तो विवाहित स्त्री तक को सलाह दे देते हैं कि पति से प्रेम न मिले, तो जिस से प्रेम मिल सके, उसके पास चली जाये। जिसके पास चित्त की अनुकूलता प्रतीत हो, उसी के पास रहना उचित है। पुनर्भू या दूसरा विवाह करने वाली विधवा या सधवा स्त्री को वात्स्यायन ने जितनी उदार दृष्टि से पहचान दी है, वह भी हमारी शास्त्र परम्परा में अन्यत्र नहीं है। एक और कुछ धर्मशास्त्रकारों की पाँत है जो कहते हैं कि चाहे कुष्ठग्रस्त हो या नपुंसक हो, पति की सेवा करना ही स्त्री का परम धर्म है। दूसरी ओर अकेले वास्त्यायन हैं, जो प्रेम को सर्वोपरि प्रतिष्ठित करते हैं।

वात्स्यायन ने अपनी सारी परिभाषाएँ वास्तविक जीवन से उठाईं हैं, प्रेमी और प्रेमिका के व्यवहार में जो सत्य, शिव और सुन्दर है वे उसको परिभाषित करते हैं। प्रेम अपनी अनन्यता मे द्वैत से आरम्भ हो कर किस तरह अद्वैत तक पहुँचता है – यह इन की परिभाषाओं से स्पष्ट है।

लेखक राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली के भूतपूर्व कुलपति हैं।

vuqokn v/;;u cuke 'kks/k

अब मै अनुवाद अध्ययन में डाक्ट्रेट (पीएच.डी.) पूरा करने के करीब हूँ तो सोचा कि 'इस अनुशाशन में पीएच. डी. (शोध) करने का क्या मतलब है?' इस बारे में थोडा बहुत लिखा जाये। जुलाई 2011 में मै इग्नू के अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विभाग में 'शोध एवं शिक्षण सहायक' के रूप में नियुक्त हुआ। जिसके अंतर्गत मुझे अनुवाद अध्ययन में शोध ा (पीएच.डी.) करने के साथ–साथ विभाग की शैक्षिक गतिविधियों में सहायता भी करना था। चूँकि भारत में कुछ गिने–चुने संस्थान ही अनुवाद अध्ययन में एम.फिल./ पीएच.डी. कराते हैं, जिनमें इग्नू भी एक है। भारत में प्रायः साहित्य अथवा भाषा–अध्ययन अथवा तुलनात्मक साहित्य में इससे जुड़े शोध कराये जाते हैं। तो अब प्रश्न उठता है कि इस अनुवाद अध ययन पाठ्यक्रम या इसमें शोध से क्या तात्पर्य है ?

वास्तव में साहित्य अथवा भाषा–अध्ययन अथवा तुलनात्मक साहित्य में अनुवाद से जुड़े मात्र एक–दो पाठ्यक्रमों का समावेश होता है। जबकि अनुवाद अध्ययन में डिग्री, डिप्लोमा या एम.ए. स्तर के अनुवाद पाठ्यक्रम भी सामान्यतः अनुवादकों के प्रशिक्षण पर केन्द्रित होते हैं। कुछ पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक और प्रायोगिक कार्यों से मिलकर बने होते हैं। इनमें विद्यार्थी अपनी भाषा दक्षता को बढ़ाते हैं। या अनुवाद सिद्धांतों को पढ़ाते और विचार विमर्श करते हैं। या अनुवाद का अभ्यास करते हैं तथा इनसे सम्बंधित कंप्यूटर पाठ्यक्रमों एवं शब्दावालियों के बारे में सीखते हैं। या कुछ लोग किसी एजेंसी के लिए काम करने या कंपनी शुरू करने के बारे में सूचनाएं जुटाते हैं या राजभाषा अनुवादक बनने की तैयारी करते है। आदि–आदि। दूसरे शब्दों में इस तरह के पाठ्यक्रमों का लक्ष्य वे छात्र हैं जो दो या उससे अधिक भाषाओँ में दक्षता प्राप्त हैं और अनुवाद के क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं।

एक अर्थ में शायद अनुवाद अध्ययन इनसे पूरी तरह से असम्बद्ध है। क्योंकि मै ऐसे कई लोंगो से मिला जो अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र में अध्ययन या कार्य कर रहे हैं और फिर भी कोई अनुवाद नहीं किया। तथा ऐसा करने का इरादा भी नहीं है (मैंने ऐसी विचित्र स्थिति देखी लेकिन वह एक अलग मुद्दा है) अनुवाद अध्ययन के एम.फिल./पीएच.डी. पाठ्यक्रम में एक छात्र शोधार्थी बनने का प्रयत्न करता है न कि अनुवादक। जैसा कि बी.ए. और एम.ए. के पाठ्यक्रमों में छात्र अनुवाद विज्ञान के सिद्धांत और प्रयोग के बारे में सीखते हैं। लेकिन एमफिल/पीएचडी के स्तर पर वे इसके बारे में गहराई से जानकारी प्राप्त करने (या तेजी से जानकारी प्राप्त करने) की उम्मीद करते हैं। वैसे छात्रों के पास पहले से ही बेहतरीन भाषाई दक्षता होती है। फिर भी लोगों को कोर्स–वर्क में कोई खास रूचि नहीं होती है। हालाँकि या उन बातों पर निर्भर करता है कि वहां का पाठ्यक्रम क्या है? या उस छात्र की अपनी विशेष जरुरत क्या है? उदहारण के तौर पर मै कोर्स वर्क के दौरान अनुवाद के सिद्धांत और अनुवाद के इतिहास या शोध प्राविधि की कक्षाओं में बैठना ज्यादा पसंद करता था। यह मुख्य रूप से मेरे अपने ज्ञान के विस्तार और सम्बन्धित शोध ग्रन्थ की .ष्टि से आवश्यक भी था।

शोध किसका ? बहुत सारे अलग–अलग संभावित क्षेत्र हैं। कोई कथा साहित्य या कथेतर साहित्य के विशेष प्रकारों के अनुवाद का शोध और विश्लेषण कर सकता है। अथवा कार्यों के विशेष प्रकारों के अनुवाद पर या भाषा के विशेष प्रकारों पर विशेष लेखक के अनुवाद पर विश्लेषण और शोध कर सकता है।इसका तात्पर्य यह है कि दो या दो से अधि ाक भाषाओं में अनूदित, अनुवादक अपने कार्य का कैसा अनुभव करते हैं, क्या अनुवादक वास्तव में वैसा ही करते हैं जैसा उनका कार्य हैं, अनुवादक कैसे अनुवाद हैं या प्रशिक्षित होने का कर्तव्य निभाते हैं।अनुवादक कैसे कम्प्यूटर यंत्रों का प्रयोग (अथवा प्रयोग नहीं) करते हैं समय समय पर अनुवाद के विचार कैसे बदलते रहते हैं, अनुवाद की आलोचना करते हैं। अनुवाद को कैसे कुछ लोगों के नियंत्रित करने में प्रयोग किया जाता है। अनुवाद कैसे एक लक्ष्य भाषा का विकास कर सकता है। किन किन परिस्थितियों में अनुवादक कार्य करता है। अनुवादक और अनुवादक के कार्यों के अध्ययन करने वालों के बीच कैसे अन्तर हैं या उनके कार्यों के बारे में सोचते हैं। और अधिक इससे भी अधिक। याद रखें कि यह उतनी ही मात्रा में निर्वचन पर भी लागू किया जा सकता है जो कि सामान्यतः अनुवाद अध्ययन के क्षेत्र के अन्तर्गत समाविष्ट है। हालाँकि निर्वचन अध्ययन एक अलग क्षेत्र के रूप में विकसित, हो रहा है और सबटाइटलिंग भी ठीक ऐसा ही है।

उदाहरण के रूप में मेरा अपना शोध तमिल कथा साहित्य के अनुवादों पर केंद्रित है। तथा मैं विशेष रूप से इसमें रुचि रखता हूँ कि कैसे लाक्षणिक/चित्रात्मक/आलंकारिक भाषा तमिल से हिन्दी में कथा साहित्य में प्रयोग और अनूदित

होती है। मैं उन लोगों को भी जानता हूँ जो लोग अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं में विभिन्न प्रकार के पाठों के अनुवाद पर या भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में कथेतर साहित्य में मुहावरेदार पदबंधों के अनुवाद पर अथवा परिचर्चाओं की सबटाइटिलिंग पर काम या शोध कर रहे हैं। कुछ शोधार्थी अपने शोध में सहायता के लिए कम्प्यूटर प्रोग्रामों का भी उपयोग करते हैं। (विशेषतः यदि उन्हें अधिक मात्रा में पाठ के कार्पस की जरूरत होती है तो) जहाँ कुछ शोधार्थी अनुवादकों का साक्षात्कार लेते हैं या तब उनके साथ बैठते हैं, जब वे कार्य करते हैं तथा कुछ अन्य शोधार्थी पाठों के गहन विश्लेषण पर केंद्रित करते हैं।

जो शोधार्थी इस क्षेत्र में शुरुआत कर रहे हैं वे प्रायः सामान्य रूप से अनुवाद के सिद्धांतों तथा उनके विशेष क्षेत्रों के बारे में जानने के लिए अधिकांश समय खर्च करते हैं। उदाहरण के लिए मैंने पीएच.डी. पाठ्यक्रम के पहले और दूसरे सत्र में मैंने काफी कुछ पढ़ा। जिसमें मैंने बाल साहित्य के अनुवाद, उपनिवेश और उत्तर उपनिवेशवाद के संदर्भ में अनुवाद (यह पढ़ना मेरे लिए इसलिए जरूरी था क्योंकि अनुवाद और सत्ता के बारे में मुझे ज्यादा सीखना था) फंक्शनलिस्ट सिद्धांत और क्षेत्र, अनूदित बोलियाँ और विश्व–साहित्य तथा संबंधित विषयों पर काफी कुछ पढ़ा। कई लोग जेंडर के सिद्धांतों अथवा पारदर्शिता के सिद्धांत अथवा आर्थिक अनुवाद या विधिक दस्तावेजों के निर्वाचन या अनुमति प्राप्त प्रोटोकाल के बारे में विचार और अध्ययन करते हैं।

अगले स्तर पर एक पाठ को लेकर शोध की शुरुआत की जाती है तथा पाठ्यक्रम से बाहर इस क्षेत्र में कुछ नया और महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। मैंने शुरुआत में पाठ के विश्लेषण और डेटा विश्लेषण का प्रयोग किया। अर्थात मैंने पाठों और उनके अनुवादों का अध्ययन किया और यह आकलन किया कि सामान्य रूप से इनमें कौन–कौन सी अनुवादकीय पद्धतियाँ प्रयोग में हैं। प्रथम सत्र में छात्र प्रायः लिट्रेचर रिव्यू करके अपने शोध के अध्याय के लेखन की शुरुआत करते हैं। इस स्तर पर एक बार शोध निर्देशक के साथ मिलकर अपनी लेखन शैली और विचारों पर विस्तृत रूप में परिचर्चा करनी चाहिए।

प्रथम वर्ष में बहुत से छात्र अकादमिक सम्मेलनों में भाग लेते हैं और कई बार उसमें प्रस्तुतियाँ भी देते हैं। किस क्षेत्र में क्या शोध हो रहा है यह जानने के लिए संगोष्ठी और सम्मेलन सबसे बेहतरीन रास्ता है। क्योंकि इनमें शामिल होकर अपने शोध पर फीडबैक भी प्राप्त किया जा सकता है। तत्पश्चात अगला कदम आलेखों के प्रकाशन की तरफ बढ़ाना चाहिए। सम्मेलनों में उपस्थिति और वक्तव्य देने तथा प्रकाशनों के होने पर शोध समाप्ति के बाद नाकरी खोजने में ये दोनों चीजें अनिवार्य होती है। शोध का अनुभव भी लाभकारी सिद्ध होता है।

छात्रों को कार्य करने तथा स्वयं अपनी कार्यसूची बनाने में स्वतंत्र और बेहतर होना चाहिए। बहुत से लोग एक पीएच.डी. छात्र बीए और एमए के छात्रों में फर्क नहीं समझते हैं। आपको कोई भी समय सीमा नहीं दी जाती और न तो कोई ये बताता है कि आपको करना क्या है (सामान्यतः कुछ शोध निर्देशक इसके विपरीत भी करते हैं)। आपको यह ध्यान रखना है कि सब कुछ आप पर निर्भर है और आपको इसे बहुत सक्रियता से तैयार करना होगा।

अनुवाद अध्ययन में पीएच.डी. में मुझे काफी अच्छा लगा। मैंने इस दौरान अनुवाद, सम्पादन, लेखन और अध्यापन का भी कार्य किया। वैसे कई शोधार्थी अपनी पीएच.डी. पर केन्द्रित रहते हैं। वास्तव में अनुवाद अध्ययन में शोध करना बहुत ही रुचिकर है। भविष्य में मैं इस क्षेत्र में अपना योगदान देता रहूँगा तथा अनुवाद कार्य करते हुए शोध भी निरंतर जारी रहेगा।

हिन्दचीन में मुझे अपनी बहुत दिनों की भूली हुई फ्रेंच का ज़ंग छुड़ाना पड़ा, क्योंकि कुछ आदमियों से बातचीत करने का कोई दूसरा जरिया ही नहीं था। हिन्दुस्तानियों से फ्रेंच में बात करना मुझे अजीब मालूम होता है। फिर भी वह उतना अजीब नहीं है जितना हिंदुस्तानियों का आपस में अंग्रेज़ी में बातचीत करना।

—जवाहरलाल नेहरु

dHkh tc ;kn vk tkr

प्रो. नामवर सिंह

कभी जब याद आ जो।

नयन को घेर लेते घन,
स्वयं में रह न पाता मन
लहर से मूक अधरों पर
व्यथा बनती मधुर सिहरन
न दुख मिलता न सुख मिलता
न जाने प्राण क्या पाते।

तुम्हारा प्यार बन सावन,
बरसता याद के रसकन
कि पाकर मोतियों का धन
उमड़ पड़ते नयन निर्धन
विरह की घाटियों में भी
मिलन के मेघ मड़राते।

झुका–सा प्राण का अम्बर,
स्वयं ही सिन्धु बन बन कर
हृदय की रिक्तता भरता
उठा शत कल्पना जलधर।
हृदय–सर रिक्त रह जाता
नयन–घट किन्तु भर आते।
कभी जब याद आ जाते।

uHk d uhy luiu e

नभ के नीले सूनेपन में
हैं टूट रहे बरसे बादर

जाने क्यों टूट रहा है तन !
बन में चिड़ियों के चलने से
हैं टूट रहे पत्ते चरमर

जाने क्यों टूट रहा है मन !
घर के बरतन की खन–खन में
हैं टूट रहे दुपहर के स्वर
जाने कैसा लगता जीवन !

iFk e lk>

पथ में साँझ
पहाड़ियाँ ऊपर
पीछे अँके झरने का पुकारना
सीकरों की मेहराब की छाँव में
छूटे हुए कुछ का ठुनकारना
एक ही धार में डूबते
दो मनों का टकराकर
दीठ निवारना
याद है, चूड़ी के टूक–से चाँद पै
तैरती आँख में आँख का ढारना ?

mu; mu; Hkknj

उनये उनये भादरे
बरखा की जल चादरें
फूल दीप से जले
कि झुरती पुरवैया की याद रे
मन कूयें के कोहरे सा रवि डूब के बाद इरे।
भादरे !
उठे बगूले घास में
चढ़ता रंग बतास में

हरी हो रही धूप
नशे सी चढ़ती झुके अकास में
तिरती हैं परछाइयाँ सीने के भींगे चास में
घास में।

lkuV&1

बुरा जमाना, बुरा जमाना, बुरा जमाना
लेकिन मुझे जमाने से कुछ भी तो शिकवा
नहीं, नहीं है दुख कि हुआ क्यों मेरा आना
ऐसे युग में जिसमें ऐसी ही बही हवा
गंध हो गई मानव की मानव को दुस्सह
शिकवा मुझको है जरूर लेकिन वह तुमसे –
तुमसे जो मनुष्य होकर भी यों गुम–सुम से
पड़े कोसते हो बस अपने युग को रह–रह
कोसेगा तुमको अतीत, कोसेगा भावी
वर्तमान के मेधा ! बड़े भाग से तुमको
मानव जय का अन्तिम युद्ध मिला है, चमको
ओ सहस्र जन–पद–निर्मित चिर पथ के दावी !
तोड़ अद्रि का वक्ष तृण ने ललकारा
बद्ध गर्भ के अर्भक ने है तुम्हें पुकारा।

lkuV&2

दोस्त, देखते हो जो तुम अन्तर्विरोध–सा
मेरी कविता कविता में, वह दृष्टि–दोष है।
यहाँ एक ही सत्य सहस्र शब्दों में विकसा
रूप रूप में ढला एक ही नाम, तोष है।
एक बार जो लगी आग, है वही तो हँसी
कभी, कभी आँसू, ललकार कभी, बस चुप्पी।
मुझे नहीं चिंता वह केवल निजी या किसी
जन–समूह की है, जब सागर में है कुप्पी
मुक्त मेघ की, भरी ढली फिर भरी निरन्तर।
मैं जिसका हूँ वही नित्य निज स्वर में भरकर
मुझे उठायेगा सहस्र कर पद का सहचर
जिसकी बढ़ी हुई बाँहें ही स्वर शर भास्वर
मुझमें ढलकर बोल रहे जो वे समझेंगे
अगर दिखेगी कमी स्वयं को भी भर लेंगे।

(हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक डॉ. नामवर सिह के 90वें जन्म दिवस पर उनकी कुछ कविताएं)

भाषा कल्पवृक्ष है। उससे जो भी आस्थापूर्वक माँगा जाता है, भाषा वह देती है। उससे कुछ माँगा ही न जाए, क्योंकि वह पेड़ से लटका हुआ नहीं दीख रहा है, तो कल्पवृक्ष भी कुछ नहीं देता।

–सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

^enfg;k* e fpf=r opLo vkj 'kk"k.k dh lLÑfr % ,d voykdu

डॉ. राम चंद्र

'मुर्दहिया' मात्र डॉ. तुलसीराम की आत्माभिव्यक्ति नहीं है, अपितु भारतीय हिंदू सामाजिक संरचना में वैषम्यपूर्ण जीवन जीने वालों की भी आत्माभिव्यक्ति है। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में 'मुर्दहिया' का अमूल्य योगदान रेखांकन योग्य है। दलित साहित्य आंदोलन के इतिहास में आत्मकथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। दलित आत्मकथाएं केवल आत्म विश्लेषण या आत्मवृत्तांत नहीं हैं, अपितु 'स्व' का सामूहिक एवं सामाजिक रूपांतरण हैं। डॉ. तुलसीराम द्वारा रचित 'मुर्दहिया' मात्र एक आत्मकथा नहीं है, बल्कि लेखक के व्यक्तिगत–पारिवारिक जीवन के साथ–साथ आस–पास के सभी वर्गों–जातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक संबंधों और उनकी जटिलताओं की भी रचनात्मक अभिव्यक्ति है। हिंदू समाज और घर–परिवार में भी उपेक्षा, अनादर और अपमान झेलते एक बालक की त्रासदपूर्ण जीवन स्थिति का यह कृति यथार्थ रचती है। हिंदू सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त जातिगत भेदभाव, अपमान, उत्पीड़न, घृणा, धार्मिक जड़ता, कर्मकांड, अंधविश्वास और विद्रूप परम्पराओं की बारीक परतों को 'मुर्दहिया' उघाड़ती है। तमाम सामाजिक–आर्थिक विषमताओं एवं जटिलताओं की सच्चाइयों से गूंथी हुई यह आत्मकथा समता, मैत्री, प्रेम और करुणा का मानस रचती है। फुले और डॉ. अंबेडकर की विचारधारा पर आधारित दलित साहित्य के मुख्य सरोकारों से यह कृति इन्हीं संदर्भों से जुड़ जाती है।

'मुर्दहिया' दलित समाज की त्रासदी और भारतीय समाज की विडम्बना का सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक और राजनीतिक आख्यान है। यह कृति समाज, संस्कृति, इतिहास और राजनीति की उन पर्तों को खोलती है जो अभी तक अनकहा, अनछुआ था; जहां न तो ठीक से साहित्य पहुंच सका था और न ही अन्य कोई पद्धतिशास्त्र। यह आत्मकथा वह पन्ना पलटती है जहां किसी साहित्यकार, इतिहासकार और समाजशास्त्री की दृष्टि नहीं पहुंच सकी थी। इस अर्थ में 'मुर्दहिया' साहित्य, इतिहास और समाजशास्त्र के अधूरेपन एवं एकांगीपन को संवर्द्धित कर खालीपन को संपूरित करती है। यह कृति हिंदू व्यवस्था की जड़ता एवं विद्रूपता के तह तक ले जाती है। भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में 'मुर्दहिया' की महत्वपूर्ण भूमिका है। 'मुर्दहिया' जैसी रचनाएं विषमतापरक समाज को समता में बदलने की पृष्ठभूमि तैयार कर रही हैं। हिंदू समाज में व्याप्त हिंसा, घृणा, शोषण एवं वर्चस्व को 'मुर्दहिया' बेपर्दा करती है; साथ ही दलित वर्ग की जटिलताओं एवं विसंगतियों का सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य भी उद्घाटित करती है। यह आत्मकथा दलित जीवन संघर्ष की सिर्फ वेदनामयी गाथा ही नहीं है, अपितु हिंदू जाति–व्यवस्था की जड़ता, अंधविश्वास, कर्मकांड, धर्मांधता तथा तमाम विभेदकारी शोषणयुक्त विषम परिस्थितियों के घेरे को तोड़कर उगते सूरत के मानिंद बालक तुलसीराम की संघर्ष–यात्रा है। अपमान, घृणा, उपेक्षा और विपन्नता की वेदना से गुजरते दलित वर्ग के बालक की मनोदशाओं की सच्ची कहानी है 'मुर्दहिया'। अपने ही देश में विभिन्न जातियों में बंटे हुए समाज की खाइयां और मनुष्य से मनुष्य के बीच की दूरियों का चित्रण करती 'मुर्दहिया' जन्म से लेकर मृत्यु तक के अपमानबोध की मार्मिक कथा है।

हिंदू धर्म और संस्कृति की विद्रूपता और क्रूरता का दस्तावेजीकरण है 'मुर्दहिया'। जाति–पांति, ऊंच–नीच, घृणा और द्वेष से गूंथा हुआ श्रेणीबद्ध समाज कौन–से तथा किस प्रकार का राष्ट्र निर्मित करेगा ? यह प्रश्न आत्मकथा में आद्यन्त बना रहता है। डॉ. तुलसीराम को मिला जातिवादी माहौल, विद्रूप सामाजिक मान्यताएं तथा देवी–देवताओं एवं अंधविश्वास से भरे हुए वैषम्य जीवन, आजाद भारत की कौन–सी तस्वीर प्रस्तुत करता है ? जिस विषमतापरक सामाजिक परिवेश और सीमाओं से घिरा हुआ डॉ. तुलसीराम का गांव है वह किस राष्ट्र का बोध कराता है ? आत्मकथा में लेखक की जाति की अवस्थिति का, कारण सहित वर्णन

डॉ. राम चंद्र, एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी), भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू

है, "इन्हीं सीवानों से घिरे हमारे गांव के सबसे उत्तर में अहीर बहुल बस्ती थी, जिसमें एक घर कुम्हार, एक घर नोनिया, एक घर गड़ेरिया तथा एक घर गोंड़ (भड़भूजा) का था। बीच में बभनौटी (ब्राह्मण टोला) तथा तमाम गांव की परम्परा के अनुसार सबसे दक्षिण में हमारी दलित बस्ती। एक हिंदू अंध ाविश्वास के अनुसार किसी गांव में दक्षिण दिशा से ही कोई आपदा, बीमारी या महामारी आती है इसलिए हमेशा गांवों के दक्षिण में दलितों को बसाया जाता है।" जाति आधारित ऐसी व्यवस्था जहां मनुष्य की पहली पहचान जाति हो, इस विभेद को 'मुर्दहिया' में अंकित करते हुए लेखक ने दलित जीवन की त्रासदी को विस्तार से लिखा है। खेत–मजदूरी पर आश्रित दलित जीवन की विभीषिका और शोषणकारी परंपरा को बड़े निर्विकार भाव से यथार्थवादी चित्रण किया गया है। डॉ. तुलसीराम लिखते हैं कि, "मेरे दादा–परदादा गांव के ब्राह्मण जमींदारों के खेतों पर बंधुआ मजदूर थे। उन जमींदारों ने ही कुछ खेत उन्हें दे दिया था। गांव के अन्य दलित भी उन्हीं जमींदारों के यहां हरवाही (हल चलाने का काम) करते थे। यह हरवाही पुश्त–दर–पुश्त चली आ रही थी।" जजमानी प्रथा के भयावह स्वरूप का विस्तृत चित्रण करते हुए डॉ. तुलसीराम ने अकाल के दिनों में भुखमरी के शिकार वंचित समुदायों की बेबसी को दर्शाया है। नाईयों, ध ोबियों, मुसहरों और नटों की बदहाली का मार्मिक चित्रण 'मुर्दहिया' में मिलता है। यह चित्रण 'स्व' और 'सामुदायिक संवेदना' का विस्तार है। इस प्रस्तुति से ही 'मुर्दहिया' मात्र एक व्यक्ति, एक जाति या मात्र एक समूह की गाथा नहीं है, अपितु वेदना का सामुदायीकरण है। इस वैषम्यपूर्ण जीवन और हिंदू–व्यवस्था की जड़ता से मुक्ति ही 'मुर्दहिया' का लक्ष्य है।

'मुर्दहिया' में शोषण और अपमान के विभिन्न स्तर हैं, जिसे पढ़ते हुए साफ तौर पर लगता है कि इस असमानपरक व्यवस्था या रीति रिवाजों की पोषक हिंदू सामाजिक व्यवस्था और हिंदू धर्म की अवैज्ञानिक मान्यताएं हैं। हिंदू समाज में व्याप्त अंधविश्वास कितना अवैज्ञानिक और मनुष्य विरोधी है – 'मुर्दहिया' में विस्तार से वर्णित है। अपशकुन और अनादर को डॉ. तुलसीराम ने हिंदू व्यवस्था की जड़ता के रूप में रेखांकित किया है, जिसके शिकार वे स्वयं रहे हैं। आत्मकथाकार ने अपने साथ उन चारों को अपनी आत्मीयता दिया है, जिन्हें अपशकुन का पर्याय मान लिया गया था। उनके गांव में स्वयं उनके अलावा निर्वंश जंगू पांडे, विधवा पंडिताइन, पोखरे वाले उल्लू, खो–खो करने वाली मरखउकी चिड़िया को देख–सुनकर गांव वालों की रूह कांप जाती थी। लेखक में मनुष्य और प्रकृति की अनुभूति का यह तादात्म्य विशिष्ट है, जिसे रेखांकित किया जाना चाहिए। दलित लेखन की अनुभूतियों का यह विस्तार है। उल्लुओं के अपशकुन होने का चित्रण करते हुए डॉ. तुलसीराम लिखते हैं, "जब उल्लुओं का वह जोड़ा कुडूक–कुडूक करके जोर से चहकता तो उनकी एकदम अलग आवाज बड़ी देर तक सुनाई पड़ती। उस आवाज को पूरा गांव अपशकुन मानता था। मेरी दादी की तरह अनेक औरतें यह कहतीं कि भूतों की पोखरे पर जब पंचायत होती है, तो उल्लू कुडुकते हुए शंख बजाते हैं, जिससे पता चलता है कि ब्राह्मण भूतों की पंचायत हो रही है।" ऐसा लगता है कि वर्चस्वशाली हिंदू व्यवस्था को कायम रखने के लिए इस तरह के 'अवमानना' के तमाम औजारों को विकसित और पोषित किया जाता रहा होगा। ऐसे ही भूत–प्रेत या आत्माओं के माध्यम से भय का आतंक विकसित करके लोगों को अवैज्ञानिक बनाकर ठगने की संस्कृति खड़ी की गई होगी। हैजा और चेचक जैसी बीमारियों को दैवीय आपदा बताकर अभी भी काफी व्यापक स्तर पर गांवों में अंधविश्वास फैलाया गया है। ये सारे अंध ाविश्वास हिंदू सांस्कृतिक सत्ता को बनाए रखने के लिए रचे गए हैं – 'मुर्दहिया' इसका पर्दाफाश करती है।

'मुर्दहिया' दलित जीवन और समाज का जैसा स्वरूप प्रस्तुत करती है, वैसा परंपरागत साहित्य की किसी भी विध ाा में पढ़ने को नहीं मिलता। डॉ. तुलसीराम की स्वानुभूति और रचनात्मकता ने भारतीय समाज के बहुत बड़े हिस्से का ऐसा सच प्रस्तुत किया है, जिसे कभी साहित्य का व्यापक विषय नहीं बनाया जा सका था। दलित साहित्य इन्हीं अर्थों में विशिष्ट है। 'मुर्दहिया' में गरीबी और भुखमरी का ऐसा पीड़ादायक चित्रण मिलता है जहां किसी अर्थशास्त्री की निगाह शायद ही गई होगी। बरसात के समय कड़की के दिनों में मैदानी चूहों का मांस और बरसाती मछलियां खाकर तथा चूहों के बिलों से गेहूँ की बालियों से अनाज निकालना दलित जीवन की विभीषिका को प्रस्तुत करता है। बरसात के दिनों में झोपड़ियों और खपरैल के घरों से पानी टपकने के बीच कई–कई रातें ऐसे ही जागते गुजार देना दलितों की

गरीबी का 'मुर्दहिया' मार्मिक चित्रण करती हे। डॉ. तुलसीराम ने अपने संयुक्त परिवार की विवशता का चित्रण करते हुए लिखा है कि, "हमारा संयुक्त परिवार बहुत बड़ा था, किंतु घर में एक भी रजाई या कंबल नहीं था। वैसे भी घर में कपड़ों की कमी हमेशा रहती थी। मेरे पिताजी पूरी धोती कभी नहीं पहनते। वे एक ही धोती के दो टुकड़े करके बारी–बारी से पहनते। ओढ़ने का कोई इंतजाम न होने से गांव के लगभग सारे दलित रात भर ठिठुरते रहते।" ठिठुरन भरे जीवन जीने को अभिशप्त दलितों की पीड़ा की सीमा का कोई अंत नहीं दिखाई देता। गरीबी और भुखमरी के बीच ब्राह्मण साहूकारी पहली बार किसी आत्मकथा में पढ़ने को मिलता है। एक सेर अनाज के बदले सवा सेर अनाज का भुगतान ब्राह्मण साहूकारी का नमूना थी। धीरे–धीरे चक्रवृद्धि ब्याज में बदलते जाना और ब्राह्मण मुनाफाखोरी के खिलाफ बगावत तथा तनातनी के माहौल का 'क्रूर की लड़ाई' में तब्दील हो जाना, अंकुरित होती दलित चेतना की बानगी है, "जब भी लाठी डंडे की नौबत आती गांव के सारे दलित पंचायत के लिए हमारे घर चौधरी चाचा के यहां आते। उसी कुएं के चबूतरे पर पंचायत होती और चौधरी चाचा सबकी राय से 'कूर' बांध देते थे। 'कूर' बांधने का मतलब था किसी निर्धारित समय तथा स्थान पर जमीन पर खपरे से एक खूब लम्बी रेखा खींच देना। उस रेखा के दोनों तरफ काफी दूर पर दोनों परस्पर विरोधी पक्ष खड़े होते। रेखा के इस पार खड़े दलित उस पार खड़े, ब्राह्मण को चुनौती देते कि यदि हिम्मत हो तो रेखा पार करके दिखावें। यदि ब्राह्मण रेखा पार लेते, तो तुरंत दलितों से लड़ाई शुरू हो जाती। ब्राह्मण हमेशा भाले और बल्लम से लैस रहते थे किंतु दलित सिर्फ लाठियां रखते। ऐसी कूर बंधी लड़ाइयों में दलित महिलाओं की वीरता देखते ही बनती थी।"

यह वह पृष्ठभूमि है जो धीरे–धीरे दलितों में आ रही चेतना का भान कराती है। आत्म सम्मान से आगे बढ़कर अधिकारों के लिए संघर्ष का नमूना है। 'कूर' बंधी लड़ाइयों की परंपरा को महाभारत के कुरुक्षेत्र में सम्पन्न युद्ध से जोड़कर डॉ. तुलसीराम 'मुर्दहिया' के माध्यम से साहित्य में दलितों की भूमिका को नया रूप प्रदान करते हैं।

'मुर्दहिया' बाल मन और बाल शोषण का ऐसा क्रदन है जिसकी चीख आद्यंत आत्मकथा में सुनी जा सकती है। लगभग सभी दलित आत्मकथाओं में बाल मनोदशा का मार्मिक चित्रण मिलता है, जो कुछ संदर्भों में 'मुर्दहिया' से भी हृदयविदारक है। परंतु 'मुर्दहिया' इस अर्थ में विशिष्ट है कि इसके लेखक का संयुक्त परिवार है और जिस परिवार का मुखिया बारह गांवों से बनी पंचायत का चौधरी भी है, जो उन गांवों के दलितों के लिए नियम–कानून और दंड–विधान का पालन करवाता है। लेकिन उसी संयुक्त परिवार के बालक तुलसीराम को अपशकुन का पर्याय बनाकर कदम–कदम पर अपमान और हिकारत का शिकार होना पड़ता है। घर के बाहर जाति के आधार पर गाली और अपमान का घूंट पीकर जीना पड़ता है। घर में 'कनवा' और बाहर 'चमरा' की गाली बाल मनोविज्ञान तथा बालशोषण का ऐसा पहलू है जिसे किसी भी भाषा साहित्य में ढूंढ़ना कठिन है। आखिर बचपन को रौंदने की वह कौन–सी संस्कृति है जिसकी शिनाख्त कोई भी साहित्य और पद्धति शास्त्र ठीक से नहीं पहचान पाते। इसकी ही खोज का नाम है 'मुर्दहिया' और संपूर्ण दलित साहित्य आंदोलन।

'मुर्दहिया' में शिक्षा और शिक्षण–तंत्र की जिस विद्रूपता का वर्णन मिलता है वह प्रगति के सारे दावों को खोखला साबित करता है। अध्यापक मुंशीराम और विशेषकर सूरतलाल द्वारा दलित बच्चों को बात–बात पर स्कूल में 'चमरकिट' कहकर अपमानित करना बालमन पर स्थायी चोट करता है। यह स्थायी घाव बाल मनोग्रंथि का शिकार बनाता है, जिससे बहुत से दलित बच्चे स्कूल छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं। बाल्यावस्था की इस मानसिक यातना से गुजरते हुए डॉ. तुलसीराम का सफर कितना पीड़ादायी रहा होगा, इससे अंदाजा लगाया जा सकता हे। डॉ. तुलसीराम प्राइमरी पाठशाला में मौजूद भ्रष्टाचार को शब्दबद्ध करते हैं, "कक्षा दो में जाने के लिए मुंशी जी ने हर बच्चे से दो रुपया 'पसकराई' यानी पास कराने का घूस लिया। यह दो रुपया मुझे बड़ी मुश्किल से घर से प्राप्त हुआ। यह 'पसकराई' सभी अध्यापक लेते थे और जो बच्चा नहीं देता उसे फेल कर दिया जाता।" आत्मकथाकार का स्कूली परिवेश छुआछूत, अपमान और घृणा से भरा हुआ था। उसका एक चित्र खींचते हुए डॉ. तुलसीराम लिखते हैं, "मिसिर शोर मचाते हुए मुंशी जी के पास दौड़े और चिल्लाते रहे कि चमरा ने कुआं छू लिया। मैं बहुत डर गया

था। उस दिन मुंशी जी रुक–रुक कर गालियां देते रहे। इसके बाद मैं कभी पानी पिलाने के लिए कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।" इस घटना से पहले डॉ. तुलसीराम लिखते हैं, "पानी पीना वास्तव में एक विकट समस्या थी। कभी–कभी तो हम चुपके से पोखरे पर चले जाते; जिसका पानी गहन जलकुंभियों से ढका रहता था। हम जलकुंभियों को हटाकर उसका पानी पीते।"

वैषम्यपूर्ण इन स्थितियों को देखकर आजाद भारत पर किन्हें गर्व हो सकता है ? जिस देश में समाज के श्रमशील वर्गों के साथ ऐसा अमानवीय और घृणित व्यवहार किया जाता हो, वह देश विकसित देशों की पंगत में कैसे खड़ा हो पाएगा ? जिस शिक्षण–तंत्र में डिप्टी साहेब की पहचान 'चमार डिप्टी' संबोधन से हो, वहां कैसी शिक्षा दी जाती होगी ? जिस समाज को सार्वजनिक स्थलों और स्कूलों में पानी पीने तक का अधिकार न हो, उस समाज की मनोदशा कैसी होगी ? वर्ण–जाति आधारित व्यवस्था का यह विकृत रूप प्रगतिविरोधी है। 'मुर्दहिया' सामाजिक परिवर्तन के लिए अभिप्रेरित करती है।

'मुर्दहिया' ही नहीं अपितु सभी दलित आत्मकथाओं में आरम्भिक पाठशाला की विद्रूपता का अंकन मिलता है। बाल्यावस्था से ही दलित वर्ग के बच्चों को मानसिक रूप से प्रताड़ना का दंश स्कूलों में झेलना पड़ा है। डॉ. तुलसीराम ने अपने स्कूली परिवेश का जिक्र करते हुए जातिवादी अध्यापकों के क्रूर चेहरे को बेनकाब किया है और शिक्षण तंत्र के भीतर सदियों से पल रहे भेदभाव और अपमान के बोध को उजागर किया है। लेखक के स्कूली जीवन में प्राइमरी स्कूल का पूरा माहौल जाति–पांति, छुआछूत और अपमानबोध ा कराने की प्रवृत्ति से भरा हुआ है। डॉ. तुलसीराम लिखते हैं कि, "पहली पंक्ति रोल नंबर एक से शुरू होकर तेरह पर समाप्त हो गई। शेष दो पंक्तियों में इसी क्रम में पंद्रह–पंद्रह बच्चे बैठते थे। मेरा नाम और स्थान पहली कतार में रोल नं. पांच के साथ होता था। इन तेरह बच्चों में मेरे अलावा चिखुरी, रमझू, बाबूराम, यदुनाथ, मुल्कू, रामकेर, दलसिंगार, जग्गन, रामनाथ, बिरजू, बाबूलाल तथा मेवा थे। शीघ्र ही इस तेरह का रहस्य उजागर हो गया। हम सभी दलित थे। मुंशी जी की उपस्थिति में हमें कोई अन्य बच्चा नहीं छूता था।" अस्पृश्यता का ऐसा दंश बालमन पर क्या प्रभाव डालता रहा होगा ? वह कौन–सी व्यवस्था है जिसे हमारा राजनीतिक तंत्र बदल नहीं पाया है ? क्या अभी भी हमारे स्कूल इन भेदभावपरक मानसिकताओं से मुक्त हो सके हैं ? 'मुर्दहिया' में डॉ. तुलसीराम ने प्रारम्भिक स्कूल के एक अध्यापक मुंशी रामसूरत लाल का जिक्र किया है जो दलित छात्रों को 'चमरकिट' कहकर गालियां देते थे। यद्यपि डॉ. तुलसीराम की मेधा की कभी–कभी तारीफ भी करते थे। ऐसे माहौल में पढ़ रहे डॉ. तुलसीराम अपनी बाल मनोदशा का जिक्र करते हैं, "मुंशी जी श्यामपट पर अक्षर लिखते और सभी बच्चों को पटरी पर वैसा ही लिखने को कहते। शुरू–शुरू में डर के मारे नरकट पकड़ते ही हाथ कांपने लगता था और लिखने की हर कोशिश असफल हो जाती थी और ऊपर से मुंशी जी की 'चमरकिट' वाली गाली इतना भय पैदा कर देती थी कि अंततोगत्वा मैं स्कूल जाने के नाम पर रोने चिल्लाने लगता था।" ऐसे आतंककारी माहौल में एक बालक की मनोदशा पर क्या बीतती रही होगी, इसका कोई हिसाब नहीं दे सकता। ऐसे मानसिक प्रताड़ना भरे परिवेश में कैसा व्यक्तित्व बनेगा ? परंतु डॉ. तुलसीराम ने अपने संघर्ष और दृढ़ इच्छा से इन विषम परिस्थितियों के घेरे को तोड़कर उच्च शिक्षा की मंजिल हासिल किया है और एक बेहतर इंसान, बुद्धिजीवी और चिंतक के रूप में स्वयं को सिद्ध किया। डॉ. तुलसीराम 'मुर्दहिया' के माध्यम से भेदभाव मुक्त समाज निर्माण के लिए सभी को प्रेरित करते हैं।

जातिगत भेदभाव से भरे हुए सामाजिक वातावरण में भी आशा और संबल की किरण भी दिखाई देती है। कक्षा एक के अध्यापक संकठा सिंह और हेड मास्टर परशुराम सिंह के सहयोग और संरक्षण से डॉ. तुलसीराम के बचपन को बहुत बड़ा संबल मिला। उत्पीड़न, घृणा और शोषण के बीच ऐसा सहयोग मानवीय मूल्यों के बचे होने की आस दिलाता है। ऐसी उम्मीदें प्रतिपक्षी के मन में सहयोगी वृत्ति को बढ़ाती हैं और मिलकर व्यवस्था परिवर्तन की आकांक्षा को बल प्रदान करती हैं। 'मुर्दहिया' शिक्षण–तंत्र की भेदभावपूर्ण मानसिकता को बदलने का खाका प्रस्तुत करती है। इस विषमतापरक मानसिकता और माहौल की वजह हिंदू सामाजिक व्यवस्था है, जो अभी हजारों जातियों के ऊंच–नीच के भेदों में बंटी हुई है।

यदि इस व्यवस्था को बुनियादी तौर पर नहीं बदला गया तो देश का विकास ठहर जाएगा। यह आत्मकथा व्यवस्था के बुनियादी बदलाव की आकांक्षा का मानस रचती है।

लोकरंग की पच्चीकारी से सराबोर 'मुर्दहिया' वेदना और पीड़ा की विविध छवियों को उद्घाटित करती है। इन छवियों की भाषा और सौंदर्य बोध परंपरागत साहित्य से भिन्न है। लोकसंगीत के विविध रूप और लोकनृत्य के विविध रंग 'मुर्दहिया' की अमूल्य थाती है, जिससे पूरी आत्मकथा गुंजायमान है। इसमें पंद्रह सदस्यीय घुमंतू नटों के झुंड को लेखक ने बड़ी आत्मीयता से याद किया है। 'आल्हा' गाने और ढोल बजाने में पारंगत नट समाज के जीवन और शोषण की कहानी भी है 'मुर्दहिया'। करताल बजाते हुए जयश्री यादव का 'बिरहा गायन' और उस गायन की समकालीनता का संबंध अद्भुत ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं प्रसंगों के बीच दलितों को अपमानित करने वाली कहावतों का भी जिक्र आत्मकथा के सरोकारों को और सार्थक रूप देता है। डॉ. तुलसीराम लिखते हैं, "लोग अकाल से उत्पन्न दुःख–दर्द को भूल गए थे। धान की अच्छी फसलों के बाद चैत वैसाख के दिनों में जौ, गेहूं, चना, मटर आदि फसलों की कटाई से दलितों के बीच काफी खुशहाली छा गई थी। इसका कारण था कुछ महीनों के लिए उचित भोजन–व्यवस्था, इस संदर्भ में हमारे पूरे क्षेत्र में दूर–दूर तक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जमींदारों के बीच चमारों को लेकर एक काव्यात्मक मुहावरा प्रचलित था – 'भादो भैंसा चैत चमार – इससे कबहूँ लगै न पार' इस निरादरपूर्ण अमानवीय अभिव्यक्ति में चमारों की पेट भर खाने की खिल्ली उड़ाई जाती थी।" यह इस आत्मकथा की वह सच्चाई है जिसे इतने प्रामाणिक ढंग से किसी भी परंपरागत साहित्य में शायद ही वर्णन किया गया हो। 'जाति' कैसे, कब और क्यों गाली का पर्याय बन गई ? यह आत्मकथा इस तथ्यान्वेषण के लिए प्रेरित करती है। यह कृति जाति के मूल में मौजूद अपमान और अनादर के कारणों की तह तक ले जाती है। इस अर्थ में यह कृति एक शोध पुस्तक भी है।

भोजपुरी क्षेत्र के लोकजीवन में बहुप्रचलित बरसाती परिवेश का अद्भुत चित्र प्रस्तुत करती है 'मुर्दहिया'। रोपनी, जरई, लेव, हेंगा, पचरी, जुआठे, नधे, डबरा–डबरी, कियारे, कंटिया, रेउवां, चिचियाती, टरराहट, ढिबरी आदि शब्द बरसात के महीने में धान की रोपाई के समय और असाढ़ के महीने का अद्भुत दृश्य उपस्थित करते हैं। ऐसी लोकभाषा का हिंदी से परिचय कराकर डॉ. तुलसीराम ने साहित्य का संवर्द्धन ही किया है। अकाल के दिनों में जमीन में पड़ी दरारों में प्राकृतिक कलाकृति का आभास देना दलित सौंदर्यबोध का नमूना है, "पानी की कमी के कारण धान के खेत, जिन्हें 'कियारा' कहा जाता, की जमीन फटकर चारों तरफ विभिन्न प्रकार की दरारों में बदल जाती थी। कियारों के इन फटे दरारों से अनेक जगहों पर तरह–तरह की प्राकृतिक कलाकृतियां बन जाती थीं। सारे खेत रेखागणित के नमूने लगते थे। कई दरारों में तो चिड़ियों की चोंच, ऊँट की गर्दन समेत मुंह तथा हाथी के सूंड नजर आते थे। उस अकाल का यह एक अनोखा सौंदर्य था, जिसमें मानव की भुखमरी और असीम पीड़ा का साम्राज्य था।" यह पीड़ा का सौंदर्य है जिसे 'मुर्दहिया' ने नया साहित्यिक अर्थ दिया है। 'मुर्दहिया' में बालक तुलसीराम की चिट्ठी पढ़ने की कहानी से लेकर उनकी उपेक्षा, अपमान और गरीबी की संघर्षरूपी दास्तां के बीच जोगी बाबा के गाने, चुड़िहारिन के गीत, नटनिया का नृत्य और सौंदर्य, विभिन्न जातियों के बीच प्रचलित लोकगीत और लोकनृत्य, लोकनाट्य, मरे हुए जानवरों के मांस पर जूझते–मंडराते चीलों का सौंदर्यबोधीय चित्रांकन, स्त्रियों का अपने पतियों से दूरियों के बीच प्रेम और वियोग का वर्णन साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इस आत्मकथा में राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, धर्म, संस्कृति, साहित्य और कला का प्रसंगवश विशद वर्णन और बुद्धमय भारत की आकांक्षा की अनुगूंज व्याप्त है। यह अनुगूंज सामाजिक परिवर्तन और समतापरक भारत के सपने की अनुगूंज है। जातिविहीन, अहिंसापरक, प्रेम और मैत्रीपूर्ण समाज की स्थापना ही डॉ. तुलसीराम जी का सपना था। उनके सपने को साकार करने के प्रति कृतसंकल्प होना ही उनके प्रति सच्ची आदरांजलि होगी।

डॉ. राम चंद्र, एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी), भारतीय भाषा केन्द्र, जेएनयू

ikLV vfHk?kkrtU; fexh ,oa bldh lHkkouk,a

प्रोफेसर दीपक शर्मा

मिर्गी यानी एपिलेप्सी का उल्लेख 2000 वर्ष पुरानी बबिलोनियन पुस्तक में पाया जाना इस बात का प्रमाण है कि यह एक सदियों पुराना मानसिक रोग है, जिसे दैवीय या दैत्य रोग के रूप में माना जाता रहा होगा, जिसके कारणवश इस बीमारी का इलाज संतों फकीरों द्वारा ही किया जाता था। पहली बार हिप्पोक्रेट्स ने इस बीमारी को दिमागी अतिक्रमण बताया जो कि बहुत ही आन्दोलनकारी मत था। यही कारण था कि इस मत को 19वीं शताब्दी के अंत तक मान्यता प्राप्त न हो सकी। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक नए विषय "न्यूरोलॉजी" का जन्म हुआ और मिर्गी को यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका में दिमागी अतिक्रमण के रूप में स्वीकार किया गया 1857 में सर चार्ल्स लोकक ने पहली बार ब्रोमाइड नामक रसायन को सबसे अधिक असरदार दवाई के रूप में ढूंढ निकाला जो कि, द्वितीय शताब्दी के अंत तक यूरोप और उत्तरी अमेरिका में बहुत प्रचलित हुई। सन् 1920 में हंस बर्गर द्वारा दिमागी तरंगों और उनके विभिन्न प्रकार की खोज के तत्पश्चात् इस बात की पुष्टि हो पाई कि मिर्गी अथवा एपिलेप्सी दिमाग की कोशिकाओं मैं उत्पन्न होने वाली विद्युतीय तरंगों के उद्गम एवं संचार में अनियमितता के कारण पैदा होती है। 1912 से 1938 तक फीनोब्रबीतों एवं फनीतों जैसी दवाइयों का उपयोग मिर्गी के उपचार के लिए किया जाता था, ऐसा पाया गया कि लम्बे समय तक इन दवाइयों का इस्तेमाल दुष्परिणामों को जन्म देने की सम्भावनाओं को बढ़ाता है, पिछले कुछ दशकों से नए–नए उपकरणों एवं तकनीकी समझ में इजाफा होने के कारण मिर्गी और उसके कारणों एवं इससे होने वाले विकारों का पता लगाया जाता रहा है।

ऐसा अनुमान लगाया गया है कि दुनिया में लगभग 40 करोड़ लोग इस रोग से ग्रस्त हैं, और 32 करोड़ ऐसे भी हैं, जिन्हें संसाधनों की कमी के कारण पर्याप्त उपचार नहीं मिल पाता है। हाल ही में 1997 में दो संगठनों, इंटरनेशनल लोगे अगेंस्ट एपिलेप्सी एवं इंटरनेशनल बेउरो फोर एपीलेप्सी एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन ने साथ मिल कर ग्लोबल एन्टीएपिलेप्सी अभियान की स्थापना की है, जिसका मुख्य लक्ष्य मिर्गी की रोकथाम, उपचार एवं देखरेख के अलावा लोगों में रोग के प्रति जागरूकता पैदा करना है।

मिर्गी किसी भी प्रकार से संक्रामक रोग नहीं है। अपितु इससे ग्रस्त व्यक्ति साधारण व्यक्ति की अपेक्षा कम उत्तेजित होते है। मिर्गी के रोगी प्रायः बरामदगी से ग्रस्त होते हैं। जो कि विद्युत मंथन का एक छोटा अंश या टुकड़ा होता है। बरामदगी मस्तिष्क को अनेकों प्रकार के कार्य करने से बाधित करते है। उदाहरणतः विभिन्न इन्द्रियों से मस्तिष्क में आने वाले संवेदी संकेतों की व्याख्या और प्रसंस्करण, एवं मांसपेशियों में असंतुलन जिसके कारण रोगी का लड़खड़ाकर धरती पर गिरना इत्यादि शामिल है। प्रत्येक मनुष्य में बरामदगी उत्पन्न करने की क्षमता रहती है। बस आवश्यकता होती है उपयुक्त परिस्थिति की। मनुष्य में मिर्गी निदान दो या उससे अधिक बरामदगी के पश्चात सुनिश्चित माना जाता है। बरामदगी की उत्पत्ति प्रायः अत्यधिक जटिल विद्युतीय–रासायनिक कार्यकलापों में होने वाले व्यवधानों के कारण होती है। यह किसी भी उम्र में हो सकती है। परन्तु ऐसा पाया गया है कि अधिकतर इसकी उत्पत्ति 20 वर्ष की आयु से पहले और 60 वर्ष की आयु के पश्चात होती है। बरामदगी के निदान के उपरान्त रोगी पँटबार्बिटों एवं अन्य बरामदगी विरोधी दवाओं पर रखा जाता है। उपयुक्त उपचार 80 प्रतिशत तक रोगी को बरामदगी मुक्त कर सकता है। जिन रोगियों में दवाओं का कम असर हो पाता है उन्हें शल्य चिकित्सा के अन्तर्गत इस रोग से मुक्त करने की कोशिश की जाती है परन्तु बहुत कम रोगी इस चिकित्सा से लाभान्वित हो पाते हैं। बरामदगी का कोई एक निश्चित कारण नहीं होता। इसके अनेकों कारण हो सकते हैं। जैसे मस्तिष्क में किसी प्रकार की क्षति, ट्यूमर, ऑक्सीजन की कमी, संक्रमण, अथवा निम्न रक्त शर्करा इत्यादि। इस रोग का निदान विभिन्न प्रकार से किया जाता है उदाहरणतः रोगी से सवाल–तलब करके, विद्युत मस्तिष्क लेखन एवं मस्तिष्क इमेजिंग मुख्यतः है।

लगभग 40 प्रकार के मिर्गी रोगों का व्याख्यान किया गया है जिनमें पोस्ट अभिघातजन्य मिर्गी मुख्य है। पोस्ट अभिघातजन्य मिर्गी की संभावना विशेषतः इस प्रकार के लोगों में पाई जाती है जो अपने जीवन काल में कभी

प्रोफेसर दीपक शर्मा, जीवन विज्ञान संस्थान, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

न कभी मस्तिष्क या मानसिक दुर्घटना के कारण होने वाली दिमागी क्षति या किसी प्रकार की मस्तिष्कीय शल्य–चिकित्सा द्वारा उपचार करवा चुके हों। ऐसे रोगियों में दुर्घटना या चिकित्सा के शुरुआती दिनों में पोस्ट अभिघातजन्य बरामदगी के पुनरावृत्ति की आशंका अधिक रहती है परन्तु सामान्य उपचार के उपरान्त पुनरावृत्ति शून्य हो जाये, इस बात की संभावना बहुत कम रहती है। दो चार वर्ष तक बरामदगी ना होने पर मरीज अपने आप को स्वस्थ महसूस करने लगता है, परन्तु रोगी इस तथ्य से अनजान रहता है कि पोस्ट अभिघातजन्य मिर्गी का दौरा पड़ने की संभावना उसके जीवन काल में सदैव बनी रहती है। चूंकि बढ़ती उम्र के साथ मस्तिष्क की कोशिकाएं और उनकी प्रसंस्करण की प्रक्रिया क्षीण पड़ने लगती है, इसलिए पोस्ट अभिघातजन्य मिर्गी के दौरे पड़ने की संभावनाएं और अधिक होने लगती है इस प्रकार की कशमकस रोगी के दैनिक जीवन पर ही नहीं अपितु सामाजिक एवं व्यवसायिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

मिर्गी जैसे रोगों के पैतृक कारणों पर भी प्रकाश डाला जाता रहा है। ऐसा देखा गया है कि चलती सीढ़ी देखना, चलती रेलगाड़ी या शीशे से झांकना, अत्यधिक ऊंचाई से नीचे देखना, पानी पर सूर्य की रोशनी देखना, वृक्षों के बीच से आती हुई सूर्य की किरणों को देखना, अधिक टीवी देखना, एवं ज़्यामितीय आकार लगातार देखना भी कुछ लोगों में मिर्गी रोग जैसी परिस्थिति पैदा करने का कारण बन सकते हैं, जिसका अहसास व्यक्ति विशेष को तब ही होता है जब वह ऐसी किसी परिस्थिति का अचानक सामना करता है, उदाहरणतः रात्रि में वाहन चलाने वाले हर व्यक्ति द्वारा होने वाली दुर्घटना, मदिरा पान अथवा लापरवाही के कारण हो, ऐसा जरूरी नहीं, संभवतः सामने से आने वाले वाहन की तेज रोशनी का उसकी आँखों पर पड़ने के फलस्वरूप मिर्गी जैसी अवस्था का अचानक पैदा हो जाना और वाहन चालक का संतुलन बिगड़ जाना भी मुख्य कारणों में से एक हो सकता है। अधिक ऊंचाई से अचानक गिर जाना आत्महत्या जैसी मानसिकता को भी किसी हद तक झूठा साबित करती है। वृद्धावस्था में खड़े–खड़े अचानक गिर जाने से होने वाले दुष्परिणामों का संभवतः एक मुख्य कारण उम्र के साथ बघ्ने वाली मिर्गी के प्रति दिमागी संवेदनशीलता भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता।

उपरोक्त अनेकों प्रकार की समस्याओं को मध्यनजर रखते हुए जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के जीवन विज्ञान विभाग में कुछ प्रयोग किये गए।

सफ़ेद चूहों पर किये गए परीक्षणों के परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि युवा अवस्था के चूहों की तुलना में जीर्ण अवस्था के चूहों में इस रोग के होने की संभावनाएं अधिक होती है, जिसके परिणामस्वरूप यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि बढ़ती उम्र, दिमाग को इस प्रकार के रोगों के लिए अधिक संवेदनशील बना देती है जिसके कारण वृद्धावस्था में मिर्गी जैसे मानसिक विकारों की ग्रस्तता से नकारा नहीं जा सकता।

अब तक इस्तेमाल होने वाली रासायनिक औषधियों के शारीरिक दुष्परिणामों को मध्यनजर रखते हुए मिर्गी के उपचार हेतु प्राकृतिक सम्पदा के मूल्यांकन की ओर विशेषज्ञों एवं वैज्ञानिक वर्ग का रुझान बढ़ने लगा है। ऐसा पाया गया है कि खानपान की शैली से भी इस रोग का निदान सम्भव है। हमारे दैनिक जीवन में इस्तेमाल होने वाली अनेकों प्रकार की वनस्पतियां विभिन्न प्रकार के रोगों के लिए गुणकारी साबित हुई हैं जिनमें से एक है हल्दी। इसमें पीला रंग पैदा करने वाला तत्व कुर्कुमिन के नाम से जाना जाता है इसमें उपस्थित हाइड्रोक्सील अणु तत्व इसकी संमार्जक क्षमता को बढ़ा देता है, चूहों के मस्तिष्क पर किये गए हमारे प्रयोगों से पता चला है कि कुर्कुमिन के लगातार उपयोग से बुढ़ापे में होने वाली दिमागी कमजोरी, ट्रामा एवं दिमागी शल्यचिकित्सा तदोपरांत पैदा होने वाली बरामदगी जैसी सम्भावनाओं से इजाद दिलाने में ही कारगर साबित नहीं होता, परन्तु उम्र के साथ बुढ़ापे में होने वाली याददाश्त एवं दिमागी सजगता जैसी कमजोरी के प्रति जन्म लेने वाली दिमागी संवेदनहीनता को भी काफी हद तक कम कर, दिमाग को चुस्त–दुरुस्त बनाता है। पश्चिमी देशों में हल्दी को प्रायः खाद्य पदार्थों को केवल रंग देने के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। परन्तु जब से अनुसंधानिक रूप से इस के औषिधीय तत्व की पुष्टि हुई है तब से हल्दी का सेवन पश्चिमी देशों में भी कैप्सूल के रूप में होने लगा है। भारत और इसके आसपास के देशों में हल्दी का इस्तमाल सदियों से मसाले के रूप में किया जाता रहा है। शायद यही कारण है कि हम पश्चिमी देशों में होने वाली बहुत सी बीमारियों से बचे रह सके हैं। चूंकि एक न्यूनतम मात्रा का सेवन हम रोजमर्रा की जिंदगी में करते रहते हैं, इसलिए सेवन से पहले एक निर्धारित मात्रा को सुनिश्चित करना आवश्यक हो जाता है। मिर्गी के अलावा चर्म रोग, पेट रोग, चोट एवं जख्म इत्यादि में भी हल्दी का सेवन बहुत लाभप्रद पाया गया है। बढ़ती उम्र के साथ एवं वृद्ध अवस्था में नियमित हल्दी का सेवन शारीरिक एवं मानसिक सेहत को

दुरुस्त करने में लाभकारी साबित हुआ है। हल्दी के अलावा जेएनयू के जीवन विज्ञान संस्थान में किये गए प्रमुख प्रयोगो में एक, देहयड्रोएपिएंड्रोस्टेरॉन नामक हॉर्मोन्स का भी सफ़ेद चूहों की बढ़ती उम्र और मिर्गी की सम्भावना पर संतोषजनक प्रभाव सामने आये हैं। यह एक स्तेरोइद जाति का हार्मोन है और पिछले कुछ दशकों से "फाउंटेन ऑफ़ युथ" की संज्ञा से नवाजा जाता रहा है। चूंकि इस हार्मोन का संश्लेषण मस्तिष्क की कोशिकाओ में भी पाया जाता है, ऐसा प्रमाणित किया जा चुका है कि उम्र ढलने के साथ–साथ इस हार्मोन के संश्लेषण में आने वाली कमी अनेकों प्रकार की मस्तिष्क में होने वाली पुनरोदीय बीमारियों की सम्भावनाओं को बढ़ा देती है जिसके कारण मानसिक कार्यकुशलता ही दुर्बल नहीं होती अपितु इसके कारण मिर्गी जैसे रोगों का अंदेशा भी बढ़ जाता है।

वैज्ञानिकों द्वारा किये गए अनुसंधानों से इस बात की पुष्टि हो चुकी है कि अगर इस देहयड्रोएपिएंड्रोस्टेरॉन नामक हॉर्मोन् को बहिर्जात रूप से शरीर में दाखिल किया जाए तो किसी हद तक उपरोक्त मानसिक पुनरोदीय बीमारियों के अंदेशों से बचा जा सकता है। जेएनयू के जीवन विज्ञान संस्थान की एक प्रयोगशाला में किये गए युवा एवं जीर्ण अवस्था के सफ़ेद चूहों पर किये गए प्रयोगों में पाया गया कि बहिर्जात रूप से इस हार्मोन को चूहों के शरीर में दाखिल किया जाने पर युवा अवस्था के चूहों में बरामदगी के उत्पत्ति की संभावनाएं विलंबित ही नहीं होती, अपितु जीर्ण अवस्था के चूहों में भी ऐसी आशंकाओं की बढ़ोत्तरी में 30 से 35 प्रतिशत की कमी देखी गयी है। अतः बढ़ती उम्र के साथ अगर इस हार्मोन के स्तर को कायम रखा जा सके तो भी बढ़ती उम्र में होने वाली मानसिक दोषों से काफी हद तक सुरक्षित रहा जा सकता है। मानसिक व्यायाम एवं शारीरिक क्षमताओं पर आधारित संतुलित भोजन एक तंदुरुस्त एवं खुशहाल वृद्धावस्था का कारण बन सकती है। हाल ही में अमेरिकन एपिलेप्सी सोसाइटी और एपिलेप्सी कौंसिल ऑफ़ ऑस्ट्रेलिया के सामूहिक प्रयास से वहां की संसदों में वर्ष 2005 से मिर्गी द्वारा होने वाली अकस्मात मृत्यु पर हुई बहस ने दुनिया भर में मिर्गी के प्रति जागरूकता पैदा कर दी है। मिर्गी का प्रतिनिधित्व अधिकतर इसकी पुनरावृत्ति से होता है क्योंकि यह एक से अधिक दोषों का समूह से सम्बंधित है। पिछले कुछ वर्षों में होने वाले अध्ययनों में की गयी पुष्टि में सबसे महत्वपूर्ण है मिर्गी से पीड़ित लोगो में लघु जीवन काल का पाया जाना। ऐसे रोगी जिनमें मिर्गी के दौरों की पुनरावृत्ति अत्यधिक होती है, 100 में से एक हर वर्ष अकस्मात मृत्यु का शिकार हो जाता है अतः इस प्रकार की मृत्यु से बचने के विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं परन्तु इस बात से भी नकारा नहीं जा सकता कि खान–पान एवं मानसिक व्यायाम इस प्रकार के रोगों में सकारात्मक एवं अहम भूमिका अदा कर सकता है।

प्रोफेसर दीपक शर्मा, जीवन विज्ञान संस्थान, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

विदेशी भाषा के माध्यम के जिसके जरिए कि भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुँचाया है। जिन विषयों को सीखने में मुझे चार साल लग गये अगर अंग्रेज़ी के बजाय गुजराती में मैंने पढ़ा होता तो उतना मैंने एक ही साल में आसानी से सीख लिया होता। इस अंग्रेजी माध्यम ने मेरे और मेरे कुटुम्ब के बीच, जो कि अंग्रेज़ी स्कूलों में नहीं पढ़े थे, एक अगम्य खाई कर दी है।

–महात्मा गाँधी

ylfxd vlekurk ,oa vU;k; % ,d lkekftd vfHk'kki

डॉ. सत्येन्द्र कुमार,

लैंगिक असमानता एवं अन्याय (Gender Inqualities and Injustice) आज सम्पूर्ण विश्व के लिए ज्वलंत समस्या एवं चुनौती है। अनेक देश आरम्भ से ही पुरुष प्रधान रहे हैं और आज भी हैं। परिवार एवं समाज में पुरुष का अधिक वर्चस्व रहता है। महिलाएं दूसरे स्थान पर मानी जाती हैं। यहाँ तक कि अनेकों परिवार एवं समाजों में तो महिलाओं को केवल उपभोग एवं हेय दृष्टि से देखा जाता है। उनकी उपेक्षा भी की जाती है। उन्हें यातना एवं यंत्रणा दी जाती हैं। हमारे धर्मशास्त्रों में भी नारी को प्रताड़ित किया गया है कि –

"ढ़ोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी।
यह सब ताड़न के अधिकारी।।"

नारी को सदैव से अबला समझा जाता रहा है। वह सदैव पुरुष पर आश्रित रही है। उसने अपने जीवन में सदैव आँसू ही देखे हैं –

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।"

लैंगिक असमानता एवं अन्याय का यह ज्वलंत उदाहरण है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि विश्व के अधिकांश देशों में कन्याओं की भ्रूण–हत्या की जाती है। उन्हें गर्भ में ही समाप्त कर दिया जाता है।

जापान से मोरक्को एवं उजबेकिस्तान से अमेरिका एवं अन्य विकसित देशों में भी यही स्थिति है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। भारत में आज भी महिलाएं दोयम स्थान पर हैं। महिलाएं उपेक्षित हैं। उन्हें विभिन्न प्रकार की यातनाएं एवं यंत्रणाएं दी जाती रही हैं। यही कारण है कि महिलाओं के संरक्षण के लिए अनेक कानून बनाये गये हैं और बनाये जा रहे हैं।

आश्चर्य तो इस बात का है कि सिद्धान्ततः पुरुष एवं नारी की समानता की बात तो की जाती है, लेकिन व्यवहार में इसके विपरीत स्थिति है। वर्ष 1897 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में महिलाओं के प्रवेश (Admission) के विरुद्ध जब वहाँ के पुरुष स्नातकों ने प्रोटेस्ट किया, तब न्यूवुमिन की जो तस्वीर उन्होंने प्रदर्शित की वह साइकिल चला रही थी। वर्ष 1921 तक इस विश्वविद्यालय में महिलाओं को फुल डिग्री नहीं दी जाती थी। यह और दुखद है कि लैंगिक असमानता एवं अन्याय में विश्व के 196 देशों में भारत का 10वाँ स्थान है। जीवन के हर क्षेत्र में आज नारी दोयम स्थान पर है जैसे –

1. परिवार में कन्याओं की बजाय लड़कों को अधिक महत्व दिया जाता है।
2. कन्याओं की शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाता है।
3. सम्पत्ति में कन्याओं अथवा महिलाओं का स्थान लगभग नगण्य रहता है।
4. महिलाएं पुरुष की तरह स्वतंत्र नहीं होती।
5. आर्थिक दृष्टि से महिलाएं पुरुषों पर आश्रित रहती हैं।
6. पति की मृत्यु हो जाने पर 'विधवा' के रूप में महिलाओं को अनेक कड़वे घूंट पीने पड़ते हैं।
7. पत्नी की मृत्यु हो जाने पर, पति आसानी से दूसरा विवाह कर लेता है लेकिन पत्नी के विधवा हो जाने पर वह आसानी से पुनर्विवाह नहीं कर सकती।
8. कन्या 'भ्रूण हत्या' की शिकार होती है।
9. महिलाएं 'दहेज मृत्यु' का शिकार होती हैं।
10. महिलाओं का 'यौन–शोषण' किया जाता है।

पुरुष एवं महिलाओं में विभेद करने वाली ऐसी और भी अनेक बातें हैं।

यद्यपि कानूनों के माध्यम से पुरुष एवं नारी के बीच विभेद को दूर करने का काफी प्रयास किया गया है, तथापि अभी काफी कुछ किया जाना शेष है। कानूनों से लैंगिक असमानता को दूर कर सामाजिक परिवर्तन की काफी संभावनाएं हैं।

ylfxd vlekurk d idkj

लैंगिक असमानता अनेक प्रकार की होती हैं –

1. tUer% vlekurk & ¼Nativity Inequality½

जन्मतः असमानता में लड़कियों की बजाय लड़को को प्राथमिकता दी जाती है, अर्थात् अधिक महत्व दिया जाता है। परिवार एवं समाज पुरुष प्रधान होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार में लड़के का जन्म चाहता है। लड़के के जन्म पर खुशियां एवं उत्सव मनाया जाता है। दूसरी तरफ लड़की के जन्म पर घर–परिवार में मातम–सा छा जाता है। यहाँ तक कि कन्याओं की 'भ्रूण–हत्या' तक कर दी जाती है।

पूर्वी एशिया, जापान, दक्षिणी कोरिया, सिंगापुर, ताईवान और यहाँ तक कि भारत में 'भ्रूण–हत्या' की अधिक घटनाएं होती हैं जिसमें हरियाणा राज्य सबसे आगे है। वस्तुतः कन्या परिवार में एक 'अभिशाप' बनकर रह जाती है।

अनेक ग्रामीण अंचलों में तो लड़कियों को तो पराया–धन (पराई) माना जाता है; अर्थात् दूसरे घर की संपत्ति माना जाता

लेखक–जेएनयू में प्रलेखन अधिकारी हैं।

है, क्योंकि वे विवाह के बाद दूसरे घर में चली जाती हैं। इसलिए भी लड़कियों के प्रति अधिक स्नेह एवं वात्सल्य नहीं होता।

2- 0;kolkf;d vlekurk ¼Professicnal or Employment Inequality½

पुरुष एवं नारी के बीच दूसरी असमानता व्यावसायिक असमानता की है। महिलाएं व्यवसाय नहीं कर सकतीं। उन्हें रोजगार आसानी से नहीं मिलता। अधिकांश कारखानों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों, कार्यालयों आदि में पुरुषों को प्राथमिकता दी जाती है। महिलाओं को श्रम–योग्य भी नहीं माना जाता। यदि कहीं महिलाओं को रोजगार मिल भी जाता है तो उनके और पुरुषों के वेतन में असमानता रखी जाती है। महिलाओं को रोजगार में पुरुष की अपेक्षा कम सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं।

3- LokfeRo dh vlekurk ¼Ownership Inequality½

सम्पत्ति में स्वामित्व को लेकर भी पुरुष एवं नारी में भारी असमानता है। अनेक समाजों में नारी का सम्पत्ति में हिस्सा नहीं होता और होता भी है तो वह नाम मात्र का। सम्पत्ति में हिस्सा नहीं होने के कारण महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक एवं वाणिज्यिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। स्वामित्व विषयक असमानता के अनेक उदाहरण हैं –

1. अधिकांशतः सम्पत्तियाँ पुरुषों के नाम से खरीदी जाती हैं;
2. अधिकांश व्यवसायों में महिलाओं की भागीदारी नहीं होती;
3. प्रोपराइटरशिप भी पुरुषों की होती है;
4. वे व्यापार का संचालन नहीं करतीं; और
5. उनके नाम से फर्म नहीं होती, आदि।

इस असमानता ने नारी को सदैव पुरुष पर आश्रित रखा है। वह धार्मिक दासता में रही है।

4- xgLFk fo"k;d vlekurk ¼Family Related Inequality½

हमारी सामाजिक व्यवस्था में पुरुष एवं महिलाओं के बीच कार्य का विभाजन है। पुरुष बाहर का काम देखते हैं, अर्थात् व्यापार, व्यवसाय आदि संभालते हैं। जबकि महिलाएं गृहस्थी (Household) का कार्य देखती हैं। गृहस्थी का कार्य सामान्यतः बाहरी कार्यों से कम महत्वपूर्ण होता है अथवा यूं कह सकते हैं कि अनुत्पादक (Unproductive) होता है। महिलाएं घर की चार–दिवारी में केवल चूल्हे, चौके तक सिमट कर रह जाती हैं। उन्हें बाहरी दुनिया में आने का न तो अवसर मिलता है और न दिया जाता है।

5- vU; vlekurk,a ¼Other Inequalities½

लैंगिक दृष्टि से पुरुष एवं महिलाओं में और भी अनेक असमानताएं हैं। जैसे –

1. महिलाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं दिया जाता।
2. महिलाओं को व्यापारिक–व्यवसाय आदि में भागीदारी का अवसर नहीं दिया जाता।
3. अधिकांश उच्च–कुल की महिलाओं को नौकरियों में नहीं जाने दिया जाता अर्थात् उन्हें नौकरी नहीं करने दी जाती।
4. उन्हें भ्रमण आदि की स्वतंत्रता नहीं होती।
5. अधिकांश ग्रामीण अंचलों की महिलाओं को पर्दे में रहना होता है।

यही लैंगिक असमानता के मुख्य कारण हैं।

fujkdj.k dk mik; &

आज के बदलते परिप्रेक्ष एवं लोकतांत्रिक युग में लैंगिक असमानता का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः लैंगिक असमानता लोकतंत्र पर प्रहार है। लैंगिक असमानता के रहते किसी भी देश को पूर्ण लोकतांत्रिक एवं विकसित देश नहीं कहा जा सकता।

लैंगिक असमानता के निराकरण से सामाजिक परिवर्तन सम्भव है। लैंगिक असमानता के निराकरण के लिए निम्नांकित उपाय किए जा सकते हैं –

1- ekufldrk esa cnyko &

लैंगिक असमानता दूर करने के लिए सर्वप्रथम मानसिकता में बदलाव लाना होगा। आज महिलाओं के प्रति हमारी जो दोयम सोच है, उसे समाप्त करना होगा। महिलाओं को पुरुष के समान मानने की सोच लानी होगी। महिलाओं को घर–परिवार में पूरा सम्मान देना होगा। उनके प्रति उपेक्षा भाव को छोड़ना होगा।

घर–परिवार व समाज में महिलाओं को बराबरी की भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। जब तक महिलाओं के प्रति हमारी सोच नहीं बदलेगी तब तक सही अर्थों में लैंगिक असमानता दूर नहीं होगी।

2- dU;k&Hkw.k gR;k ij lkoZHkkSfed jkd &

कन्या को अभिशाप मानकर उनकी भ्रूण–हत्या किया जाना लैंगिक असमानता का स्पष्ट उदाहरण है। अतः हमें 'कन्या–भ्रूण हत्या' को सार्वभौमिक रोकना होगा। इसके लिए कठोर कारावास की सजा अनिवार्य होनी चाहिए। जिस प्रकार लड़के के जन्म पर परिवार में खुशियां एवं उत्सव मनाया जाता है, उसी प्रकार कन्या के जन्म पर भी परिवार में खुशियां एवं उत्सव का माहौल निर्मित करना होगा।

कन्या को देवी, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, झांसी की रानी, मीरा आदि मानकर उसका स्वागत करना होगा। घटता हुआ कन्याओं का अनुपात समाज के सामने एक बहुत बड़ा संकट व चुनौती है जिसे हम सभी को स्वीकार करना होगा।

3- jkt xkj dk leku volj &

लैंगिक असमानता दूर करने के लिए महिलाओं को शिक्षित, आत्मनिर्भर अथवा स्वावलम्बी बनाया जाना बहुत ही आवश्यक एवं समय की मांग है। जब तक महिलाएं शिक्षित व आत्मनिर्भर नहीं होंगी तब तक पुरुषों की सोच में बदलाव नहीं आयेगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि महिलाओं को शिक्षित व रोजगार दिये जाएं, उन्हें व्यापार एवं व्यवसाय के लिए प्रेरित किया जाए, सरकारी एवं गैर–सरकारी नौकरियों में बराबर का स्थान दिया जाए, उन्हें अंशकालिक (Part-time) कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए, उद्योगों एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जाए, घर–परिवार का आर्थिक प्रबन्ध उन्हें सौंपा जाए तथा उन्हें आर्थिक स्वायत्तता प्रदान की जाए, इत्यादि। इससे महिलाओं के मन में हीन–भावना एवं कुण्ठा पैदा होती है और वे कार्य करने की इच्छा नहीं करतीं।

वस्तुस्थिति यह है कि आज कई क्षेत्रों में महिलाएं पुरुष से अधिक सक्षम एवं योग्य हैं। कुछ नियोजनों में तो उनका एकाधिकार कहा जा सकता है। फिर भी उन्हें पुरुषों की अपेक्षा कम वेतन एवं पारिश्रमिक दिया जाना न्यायोचित नहीं है। अतः 'समान कार्य के लिए समान वेतन' (Equal pay for equal work) को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। विश्व प्रसिद्ध सिलिकॉन वैली में भी लैंगिक असमानताएं आज भी व्याप्त है। कार्यरत महिलाओं की बढ़त के मामलों में भी ऐसी ही तस्वीर है। यहाँ पर महिलाओं का प्रतिशत काफी कम है। कार्यरत महिलाओं की संख्या में साल 2014 में एक प्रतिशत की ही वृद्धि हुई। एफबी और टिवटर की महिला इंजीनियर्स की सेलरी और प्रमोशन के स्तर पर भेदभाव की शिकायतें जब कोर्ट तक पहुँची तब इसे सार्वभौमिक तरीके से स्वीकार किया गया।

एपल और माइक्रोसॉफ्ट में भी मात्र 23 प्रतिशत महिलाएं ही हैं। माइक्रोसॉफ्ट के सीईओ तो महिला कर्मचारियों के साथ पक्षपात के मामले में विश्वविख्यात हैं। सिलिकॉन वैली में पुरुष अपनी महिला सहकर्मियों की तुलना में 61 प्रतिशत अधिक वेतन ले रहे हैं। सिलिकॉन वैली की हलचल का असर ग्लोबल इकॉनमी पर पड़ता है इसलिए यहाँ सैक्सुअल डिस्क्रिमिनेशन की शिकायतें अक्सर मिलती हैं।

4- lÙkk ,oa f'k{kk esa Hkkxhnkjh ¼Partnership in Administration and Education½

सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करके भी लैंगिक असमानता को समाप्त किया जा सकता है। अभी तक सत्ता में महिलाओं की भागीदारी नाममात्र की है। उन्हें सत्ता के योग्य नहीं माना जाता हे। यह हमारी गलत धारणा है। अब तो भारत में महिलाएं मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति भी रह चुकी हैं। अतः सत्ता में महिलाओं के स्थान आरक्षित किये जाने चाहिए। संसद, राज्यसभा, राज्यविधान मण्डल एवं स्थानीय संस्थाओं (पंचायतें, नगरपालिकाओं आदि) में उनका प्रतिशत सुनिश्चित किया जाना चाहिए। सत्ता में भागीदारी से महिलाओं में आत्म सम्मान एवं आत्म विश्वास का भाव पैदा होता है।

हमारी यह सोच है कि कन्या तो विवाह होकर दूसरे घर में चली जायेगी, अतः उसे क्यों पढ़ाया जाये और क्यों उसकी शिक्षा पर धन व्यय किया जाये। इस बदलते परिप्रेक्ष में जहाँ शब्दों के अर्थ एवं प्रोनाउन्सेशन बदल रहे हैं तो इस सोच को भी बदलना ही होगा। महिलाओं को उच्च शिक्षा के लिए प्रेरित करना ही होगा। उन्हें अधिक से अधिक शिक्षक, चिकित्सक, अभियन्ता, शोध कर्त्ता, वैज्ञानिक, प्रशासनिक अधिकारी, अधिवक्ता एवं न्यायाधीश आदि बनाना ही होगा।

5- efgyk lxBu & ¼Women Organisation½

लैंगिक असमानता दूर करने के लिए महिला संगठन (Women Organisation) के लिए उन्हें प्रेरित करना होगा, क्योंकि ये काफी सार्थक सिद्ध हुए हैं। महिलाओं को अपना संगठन बनाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। ऐसे संगठन का लाभ यह होगा कि – महिलाओं में साहस एवं आत्मविश्वास जागृत होगा, वे अपने ऊपर होने वाले शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध आवाज एवं संघर्ष कर सकेंगी, वे रोजगार के क्षेत्र में अधिक कदम रख सकेंगी, उनमें समाज सेवा का भाव पैदा होगा, इससे महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का संचार होगा, वे सत्ता में भागीदार बन सकेगी, वे घर की चार दिवारी के बाहर खुली हवा में सास ले सकेंगी; उनमें आत्म सम्मान, आत्मनिर्भरता एवं स्वावलम्बन का भाव उत्पन्न होगा, इससे सामाजिक बुराइयों एवं कुरीतियों का उन्मूलन हो सकेगा। लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए, ऐसे अनेकों उपाय हो सकते हैं। आवश्यकता लैंगिक असमानता दूर करने के लिये कटिबद्ध होने की है।

Hkkjrh; ifjn`';

यह सुखद है कि भारत में लैंगिक असमानता दूर करने के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सार्थक प्रयास किये गये हैं और भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा किये भी जा रहे हैं। विधान, संविधान एवं न्यायिक–निर्णयों में लैंगिक असमानता दूर किये जाने के प्रयास स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर भारत में लैंगिक असमानता को समाप्त करने के लिए प्रभावी उपाय किये गये हैं। लैंगिक असमानता को समाप्त करने वाली विधियों से सामाजिक परिवर्तन को आशातीत गति मिली है। हम सभी भारतवासी मिलकर इस सामाजिक अभिशाप से अपने देश को मुक्ति दिलाएं, इसके लिए आज से ही हमें अपने परिवार से इस प्रयास को प्रारम्भ करना होगा, तभी इस देश की समस्त महिलाओं का सर्वांगीण सामाजिक विकास होगा और पुनः मेरा भारत महिलाओं के विकास में विश्व के लिए एक आदर्श साबित होगा।

लेखक जेएनयू में प्रलेखन अधिकारी हैं।

lo/ke lEHkko % lr| l lxe dk vkRekFku

डॉ. नीरज कुमार श्रीवास्तव

विद्वान व्यक्ति हमेशा सर्वधर्म समभाव के बारे में एक बात कहते हैं कि "सभी धर्मों का एक लक्ष्य है, ईश्वर की प्राप्ति। विभिन्न धर्मों में ईश्वर तक पहुंचने के अलग–अलग मार्ग हैं।" यह कथन है तो बहुत अच्छा, पर क्या यह सामान्य जन तक धर्मों की एक रूपता को परिभाषित करने का व्यवहारिक माध्यम है। मेरा यह विचार है, कि यह कथन सैद्धांतिक पक्ष को अधिक परिलक्षित करता है, न कि व्यावहारिक धरातल को। व्यावहारिक पक्ष को पोषण तभी मिल सकता है, जबकि विभिन्न धर्मों के बीच व्यावहारिक समानता को उजागर किया जाये और उन्हें सामान्य जन तक पहुँचाया जाये। यह समानता धार्मिक कर्मकाण्डों, संस्कारों, भाषायी और धार्मिक–सांस्कृतिक गतिविधियों में समाहित हो सकती हैं।

मूर्तिपूजा विभिन्न धर्मों जैसे हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म व यजीदी धर्म में किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती है। यह भी धार्मिक समानता का एक उदाहरण है।

हिन्दू धर्म व इस्लाम धर्म में भी कई समानताएं हैं जैसे कि हिन्दू धर्म की एक शाखा निराकार व एकेश्वरवाद में विश्वास रखती है जैसा कि इस्लाम धर्म का सिद्धान्त कहता है, "अल्लाह एक है और मुहम्मद साहब उनके पैगम्बर हैं।" इस्लाम धर्म में मूर्तिपूजा वर्जित है और इस प्रकार से यह भी निराकार ईश्वर की उपासना पर ही बल देता है।

विश्व में कई धर्म किसी महान व्यक्ति या महापुरुष द्वारा चलाये गये हैं, जैसे कि इस्लाम धर्म मुहम्मद साहब द्वारा, बौद्ध धर्म बुद्ध द्वारा, जैन धर्म महावीर स्वामी द्वारा व ईसाई धर्म मसीहा द्वारा, इस प्रकार से यह भी धार्मिक समानता का एक आधार है।

मृत्यु के पश्चात होने वाला अन्तिम संस्कार जिसमें मृत शरीर को अग्नि में समर्पित किया जाता है। इस प्रकार का धार्मिक कर्मकाण्ड हिन्दू, जैन, बौद्ध व सिक्ख धर्म में समान है। यह धार्मिक कर्मकाण्ड भी समानता का एक आधार है।

यजीदी धर्म को मानने वाले यजीदी समुदाय एक सीमित संख्या में ईराक, सीरिया, जर्मनी, रूस, आर्मीनिया, नीदरलैण्ड व स्वीडन में रहते हैं। अभी हाल में यह समुदाय व धर्म चर्चा में आया, जब कि आईएसआई (इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एण्ड सीरिया) ने ईराक में इनका नरसंहार करना व धर्म–परिवर्तन करना आरम्भ किया। यजीदी धर्म व हिन्दू धर्म में इतनी समानता है कि उनके बीच विभाजक रेखा खींचना बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। यजीदी (पूजा स्थल) मंदिर व गुम्बद गोपुरम् (पिरामिड) आकार में होते हैं, जो कि सभी हिन्दू मंदिरों का आकार है। यजीदी लोग मयूर के आकार का दीप पूजा के लिए प्रयोग करते हैं, जो कि शुभ कार्यों व धार्मिक अनुष्ठान के लिए हिन्दू धर्म में भी प्रयोग किया जाता है। इराक के लालिश नामक स्थान पर स्थित एक यजीदी मन्दिर के बाहर सर्प का प्रतीक स्थित है, जोकि हिन्दू देवता विष्णु के साथ विराजमान है। इसी प्रकार से "नमस्कार" जो कि हिन्दू धर्म का आदर व वन्दना को व्यक्त करने का माध्यम है, यजीदी धर्म के लोगों में भी प्रचलित है। धार्मिक त्योहारों व शुभ कार्यों के लिये दीप–प्रज्ज्वलित करना हिन्दू धर्म का एक ऐसा संस्कार है जो कि यजीदी धर्म में भी परिलक्षित होता है। माथे पर तिलक लगाना हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डों में से एक है और यह यजीदी धर्म में भी प्रचलित है।

उपरोक्त वर्णित धार्मिक–समानताओं के आधार पर इस विभिन्न धर्मों के बीच सेतु निर्माण कर सकते हैं। सेतु का काम ही है, एक सिरे को दूसरे सिरे से जोड़ना। इस प्रकार का सेतु इन्हीं समानताओं के धरातल पर ही निर्मित किया जा सकता है। इस प्रकार के सेतु का निर्माण मध्यकालीन भारत में किया गया था। मध्यकालीन भारत में हिन्दू धर्म व इस्लाम धर्म के बीच सेतु का निर्माण सूफीमत व भक्ति आन्दोलन के संतों ने बहुत ही मजबूती से किया है। इन संतों ने हिन्दू व इस्लाम धर्म दोनों के मत, कर्मकाण्डों व विचारों को समाहित करके सामान्य जन के बीच प्रचारित किया। इन महान संतों में कबीर, नानक, दादू व रैदास प्रमुख थे। धर्मों के बीच सेतु निर्मित होने के पश्चात धीरे–धीरे इनके बीच निकटता आयेगी तो यह क्रमिक रूप से संगम की ओर अग्रसर होगा, जैसे कि गंगा व यमुना आपस में संगम कर एक रूप हो जाती हैं, जहाँ विभिन्नता का आधार सीमित हो जाता है और समानता का आधार अपना विस्तार करता है। इसी विस्तार की हमें प्रतीक्षा रहेगी और यह विस्तार न केवल सर्वधर्म समभाव के धरातल को मजबूत करेगा, बल्कि अनेकता में एकता के संगम का साक्षी भी होगा। यह विवादों के संकीर्ण व उलझे हुए प्रस्तर–खण्डों को तोड़ते हुए समरसता व प्रेम के प्रवाह को अनवरत बनाते हुए समुद्र का रूप लेकर संपूर्ण विश्व के लोगों में शान्ति व मित्रता का भाव जागृत कर "वसुधैव कुटुम्बकम्" को वास्तविक रूप में चरितार्थ कर

डॉ. नीरज कुमार श्रीवास्तव, पूल साइंटिस्ट, जीवन विज्ञान संस्थान, जेएनयू, नई दिल्ली–110067

bUr tkj

बलवन्त सिंह

बड़ी उत्सुकता से रात,
कर रही थी इन्तजार
सूरज के छिपने का
और बेकरार हो रही थी
देखने,
एक नयी अन्धेरी दुनिया को।

सूरज जैसे ही छिपा
दूर क्षितिज में,
लेने लगी रात,
अपनी आगोश में
हर प्राणी, हर गली व शहर को।

खुश होने लगे सारे निशाचर
विचारने लगे थे आज सभी
होगा, हर तरफ उनका साम्राज्य
सारे काले कारनामे
असामाजिक, अवांछित पैमाने।

अँधेरे के मित्र,
भिड़ा रहे थे तिकड़म
किसी निरीह, लाचार को लूटने की
और सोच रहे थे !
सुनाई देगी हर ओर
बेबसी और लाचारी की
निःशब्द, दर्दनाक चीत्कार।
और मस्तमौला बन,
झूमता जायेगा अन्धकार
अपने गणों के साथ
ज्यों–ज्यों बीतती जाएगी रात।

इस सोच से बेखबर
कि, हर रोज की तरह
अंधकार को पराजित कर,
फिर निकलेगा नव प्रकाश पुंज,
और सभी स्याह पसंद,
हो जायेंगे मौन
शक्ति हो जाएगी क्षीण
बेबस, जैसे मौत के करीब।
टूट कर बिखरता नहीं,
सिमट जाता है अँधेरा
मान लेता है अपनी हार।
रात देख न पाई
जो सोचा था कुटिलता से।

निशाचरों का जीवन
होता ही कितना लम्बा है ?
क्षण भंगुर,
टूट कर बिखर जाते हैं
पल भर में,
जैसे माला से मनके,
ऐसे ही मिट जाता है
रात्रि चरों का जीवन।

एक नया उल्लास
छा जाता है हर तरफ
नए दिन की आस में,
नव जीवन की तलाश में
और शुरू हो जाता है नया सफ़र
जिंदगी का, नयी ऊर्जा के साथ
रोशन हो जाता है सबका संसार
दिन के उजाले में,
अरुणोदय से अस्तांचल तक।

रात, अब नहीं करती इन्तजार,
सूरज के छिपने का ...।

बलवन्त सिंह
जीवन विज्ञान संस्थान, जेएनयू
मोबा.– 9868093863

viuk fo'ofo|ky;

अभिषेक सौरभ

आपने देखा है कभी
अपने विश्वविद्यालय को
केन्द्रीय ग्रंथालय के पाँचवें तल्ले से
उसकी चटकी हुई खिड़कियों की
चश्मनुमा आँखों में आँखे डालकर
कभी देखियेगा इत्मीनान से
बड़ा ही खूबसूरत लगता है
अपना समूचा विश्वविद्यालय प्रांगण
अपनी पूरी हरीतिमा
और जीवन्तता के साथ
शोध के पन्नों सी, परिपक्वता लिए हुए
अपनी बारीक बुद्धिमत्ता में
खोए हुए; बुद्धिजीवियों जैसी !!

बहुत सुबह–सुबह
अलसायी भोर की
अधजगी, उनींदी आँखों में
बचपन की याद लगती है प्रांगण !

दिन दोपहर ढ़ले
जब सूरज अपने शवाब पर होता है
तो किशोरवय सपनों जैसी
बड़ी खोई–खोई, बिखड़ी हुई
ख़्वाबों की ताबीर लगती है प्रांगण !

दिन ढ़लती है – शाम आती है
शाम के धुँधलके में
सुंदरता, इस उपवन की
और भी बढ़ जाती है
बूढ़े बाबा की धवल दाढ़ियों जैसी
स्निग्धता छा जाती है पूरे प्रांगण में
और फिर गंगा से लेकर,
ब्रह्मपुत्र–पूर्वांचल तक
ढ़ाबाओं की दुनिया गुलजार हो जाती है !

कभी देखिए इसे फिर
कन्वेंशन सेंटर के आँगन की
हरी घास पर लेटकर
गुजरती हुई रात में
आकाश निहारते हुए
सच कहता हूँ :
सिरहाने रखी ख़्वाबों की पोटलियों के दरम्याँ
चाँदनी रातों में चाँद,
बहुत करीब नजर आएगा !
और रात ग़र अमावस की हो
तो चाँद, अपना नसीब नजर आएगा !!

दामोदर की पदयात्रा,
जो तीर्थाटनों जैसी दुरूह है
और गुफाओं की सैर के साथ–साथ
इस बगिया के दिल का;
एक और कोठा –
बेहद सदाबहार है !
जी हाँ ! पार्थ सारथी रॉक्स !!
पीएसआर की चट्टानें यूँ लगती हैं, जैसे;
समन्दर की छाती पर इक गर्वीला टापू !
और इस चट्टानी सफ़ीने पर लेटे हुए हम
अपने–अपने समन्दरों के रॉबिन्सन–क्रूसो !!

ये प्रांगण ! अपना प्रांगण !
हमारा–आपका–सबका विश्वविद्यालय प्रांगण !!
यूँ तो हर मौसम में शानदार लगता है,
पर ज़रा सा और हसीनतर हो जाता है
सावन की झिलमिलाती;
बरखा की बूँदों के बीच !
उस मौसम में,
उड़ती हुई हवाओं के साथ
उड़ती हुई बारिश की बूँदें
अरावली के इस पठारी–कंटीले
जंगलों के ऊपर;

एहसास कराते हैं
मसूरी, ऊटी और शिमला सी
पुरकशिश फजाओं की
कसम से !
इससे जरा सा भी कम
महसूस नहीं होगा, आपको
हमारी इस हरी–भरी वादियों की
पथरीली आगोश में !
जो दादी–अम्माँ की गोद जैसी
बेहद नर्मो–नाजुक वा मुलायम है !!

vjkoyh dk pkn

पूणों की चाँद को
देखा था पहले भी
हमने, कई दफा
पर
अबकी देखा
जेएनयू में;
कावेरी के दाहिने से जो
सड़क जाती है
ओल्ड ट्रांजिट हाउस की तरफ
उसी पर
सड़क के शुरुआत में ही
जहाँ वो हरियाणवी ताऊ जी
लगाते हैं दूकान
फलों की कभी–कभी
सुबह, दिन के पहले पहर
उसी सीधी सड़क पे
बिजली के खंभे के
जरा सा आगे
दोनों तरफ की पेड़ों के
झुरमुट की चादर पे
लेटा था चाँद
कल
पूणों की रात में !!
उलझी थी उंगली
चाँद की
झुरमुट की जुल्फों से
स्याह काले केश
पुरकशिश पुरसकुँ से लबरेज
बेहद नरम
जज्बाती !
ज्यों ख्वाब दर ख्वाब
एक मीठा सा अफसाना
बुनता जा रहा था, चाँद
कल
पूणों की रात में !!

तिलिस्मी चाँदनी के
सम्मोहन के पाश में
बँधे हुए हम
बैठ गए
वहीं
कंक्रीट की खुरदुरी
रेशमी सड़क पर
ढ़ाई बजे रात में
पढ़ने को
चाँद से
ढ़ाई आखर प्यार के
जो कनखियों की भाषा में
बादलों की ओट से
पढ़ा रहा था चाँद
कल
पूणों की रात में!!

अभिषेक सौरभ, एम.ए. द्वितीय वर्ष (हिन्दी)
मोबा. 9968817104

xxk flg 'k[kkor

J)ktfy

सच मत बोलो
कभी न बोलो
लेखकों, कवियों, समाज सेवकों
मार डाले जाओगे
बेमौत
डाल दिए जाओगे
जेलों के सलाखों के पीछे
गर तुमने सच का सहारा लिया
सच्चाई को उजागर करने की
कोशिश की
मार डाले जाओगे
अगर तुमने
सच्चाई का मंचन करने की
कोशिश की
मरवा दिए जाओगे
सफेद पोशों द्वारा
और उन लोगों द्वारा
जो समाज में
साम्प्रदायिकता का
जहर घोलते हैं
और अन्त में
सुना दिए जाओगे
रेडियो, टीवी पर
छाप दिए जाओगे
अखबार, पत्रिकाओं में
और अर्पित की जाएगी
श्रद्धांजलि।

गंगा सिंह शेखावत, सहायक, हिंदी एकक

नवीन सिंह

lcl cMk lgkjk

बचते–बचते मैं आखिर फिसल ही गया।
मुख से मेरे बचाओ निकल ही गया।
ढूँढता पतवार तो डूब जाता, मगर
लेके 'खुद का सहारा' मैं निकल ही गया।

turk jg Lor=

राम नाम कै लूट है, कहै का तौ सरकार।
'राम' नाम पै लूट रहे, धरम के ठेकेदार।
का रहीम, अल्लाह का, महावीर, का बुद्ध,
आपन देउता चुन रहैं, निरपेछी परबुद्ध।

कबिरा अनपढ़ कहि गवा,
जेतनी साँची बात।
अबके ग्यानिन के नहीं,
बोलै के औकात।

धरम, जाति के नाम पै,
सब केहूँ हैं मौन।
ई दुइनौ गर मिट गवा,
अगिता हथकण्डा कौन ?

राजतिलक करवाय के,
जनता दीन्ही अधिकार।
अपने हक मा खाय रहे,
राजनीति कै मार।

लोक तंत्र मा दिखा रहा,
लोक पै हावी तंत्र।
कउनो सत्त होय, बस
जनता रहै स्वतंत्र।

नवीन सिंह, हिन्दी विभाग, जेएनयू, मो. 7065216979

l|'kkr dekj 'kekZ

1- dfork dk ân;

मैं अपनी भावनाओं को
उतार देना चाहता हूँ
तुम्हारे हृदय में पर
माध्यम वही
अधूरे, अशक्त, शब्द व भाषाएँ।
जैसे कि
मैं लिखूं 'आँसू'
और पढ़कर पसीज जाए
हृदय तुम्हारा
खिल उठे
कमल दल होठों पर
जब पढ़ो 'मुस्कान'
मेरा लिखा
यह भाषा का
हृदय पट्टा है जो कि
जोड़ता है मुझे
तुमसे।
सुना है भाषा वहाँ
होती है मूक, (जहाँ होता है हृदय)
मेरी भाषा में
हृ–तत्व की कमी हो सकती है
पर असंभव नहीं
कि तुम उसकी व्यंजना में
प्राण और स्पंदन डाल सको
पर, अक्सर ऐसा नहीं होता
तो यह सिर्फ
कविता का दोष नहीं।
तुम शब्द के तलछट पर
हृदय नहीं खोलते
क्योंकि शायद
वह मुझे तुम्हारा हाथ नहीं।
मेरे शब्द तुम्हारे
मन को छू लें
ऐसा तुम नहीं चाहते
तुम्हारा हृदय हो सकता है असीम
मेरे लिए
पर मेरे शब्द की सीमा
तुमने तय कर दी है
जहाँ से शुरू होती है
परिधि तुम्हारे हृदय की
वहाँ मेरी भाषा को
प्रवेश नहीं है।

1- fxjk vjFk le

आओ हे प्रिय !
हम हो जाएँ
गिरा–अरथ सम।
या रहने दो
शब्द श्लेष भी हो सकते हैं
और अर्थ पर
भाव प्रबल हो जाने का
डर बन जाएगा।
क्यों न बने हम
दो शब्दों के बीच अलिखित
सम्भावनाएँ व्याख्या की
मैं बन जाऊँ शब्दों के
बीच अचिह्नित अंतराल
तुम अर्थ उसी सन्नाटे को दो।
तुम्हें देखने और तुम्हारे तक जाने में
मुझसे होकर जाने की
हो नहीं विवशता
पर तुमको पाते ही मेरा
मान महत्व मुखर हो जाए
मैं रहकर अदृश्य तुम्हारी
व्यंजकता हूँ और
प्रकट होकर तुम
मेरा बिम्ब दिखा दो।
और न हों हम सुलभ
कभी हम मान हीन
कोई प्रेमी, जिज्ञासु ही
बस हमको पाये
आओ प्रिय !
हम मिलकर सन्नाटा
हो जाएँ।

सुशांत कुमार शर्मा, एम.ए. (हिंदी), भारतीय भाषा केन्द्र

1- ml jkr tc cny jgk Fkk ekle

& #fcuk lQh

उस रात
जब बदल रहा था मौसम
चुपचाप
बिना किसी आहट के
जैसे किसी पौधे की बढ़त होती है
चुपचाप
और किसी को पता भी नहीं चलता
दिखाई देती हैं सिर्फ नई पत्तियां
ताजी पत्तियां
वो वक्त कोई नहीं देख पाता
जिसमें बनती हैं पत्तियां
जिसमें कोपलें खाद–पानी
लेती हैं जमीन से
जिसमें अंगडाई लेते हैं
हवा में सांस लेने के पत्तियों के अरमान

उस रात जब बदल रहा था मौसम
यह वही वक्त था
ताजा पत्तियां की बढ़त का
कोपलों के फूटने का
जिंदगी की शुरुआत का
सपनों का
उम्मीदों का
रंगों का

कौन से शब्दों में कहूँ
उस वक्त क्या चल रहा था
पत्तियों के मन में
कैसे कहूँ क्या महसूस किया उसने
हवा में सांस लेते हुए
कैसे बताऊँ कि जिंदगी की शुरुआत
ठीक–ठीक कब और कहाँ से हुई
उस वक्त समय तो था
लगातार बहता हुआ
पर घड़ी नहीं थी कि माप सकूँ
सारे मापक बेमानी हो गए थे
तब क्या पता था मुझे कि
एक दिन हिसाब देना होगा
जिंदगी का
एहसासों का
मौसमों का
मुझे माफ करना
मैंने जिया पूरा का पूरा तुम्हें
पर हिसाब नहीं रखा...

.....

2- r|eu dgk

तुमने कहा
सुबह
और मेरे लिए
वो सारी रोशनी और गर्माहट का मतलब हो गई
तुमने कहा
रात
और मेरेलिएवो सारे सुरमई ख्वाब सच होने लगे
तुमने कहा
बसंत
मैंने तुम्हारा मुझमें होने का मतलब जाना
लेकिन
तुम्हारे कहने और होने की दूरी के बीच
धूप कुछ और गर्म थी
रातें कुछ और स्वप्निल
बसंत कुछ और रंगों भरा
तुम्हारे कहने और होने के बीच
उम्मीदों और उजालों की पूरी दुनिया थी।

.....

3- dfork,¡ dkxt ij Bgj tkrh g

वक्त नहीं ठहरता
रेलें नहीं ठहरती
नब्ज नहीं ठहरती
भूख भी नहीं
बुरे सपने और
हत्यारों के हथियार भी नहीं
ठहर जाती हैं कविताएँ
कागज़ पर
लेकिन
उन्हें लोगों के बीच होना चाहिए।

.....

4- o dgr g

वे कहते हैं सफ़ेद
जो घला है
वे बताते हैं हमें
झूठे सच का मतलब
वे अंधेरों को
रहस्यों में बदल देते हैं
वे दृश्यों को कोहरों से
ढ़क देते हैं
और कहते है देखो साफ साफ
वे घोड़े और घास को बराबर की
छूट देते हैं
और गढ़ते हैं लोकतंत्र का मतलब
वे अन्याय को बंदूकों की नोक से दबाते हैं
और समझाते हैं हमें शांति का मतलब
वे गीतों को
कविताओं को
कला के नाम पर
ले जाते हैं
जिंदगी से दूर
वे नहीं जानते
उजालों को कैद करना
कितना मुश्किल है।

.....

Je dk u;k lkn;'kkL= % ^lkoyk jx* vkj dfo d eu dk ^gjkiu*

भावना बेदी

"सहज संगति की चाह
पूरी हो कामना अनन्तिम इसलिए
थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ
x x x
हरियाली से गुजरता
हरा होना चाहता हूँ।"

(थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ : पृ.)

थोड़ा–सा स्त्री होने की इच्छा ने मानो कवि के घर की देहरी पर दस्तक दी है, ये दस्तक एक जटिल और गहरा बोध है। जीवन को उसकी सम्पूर्णता में जानने का उसे जीने का।

कवि की सर्जना का हरापन स्वयं उसके द्वारा ही निर्मित (कल्पनीय) नहीं है। उस हरेपन में हरे का अधिकांश रंग हर उस स्त्री के श्रम से आता है; जो खेतों, पगडंडियों, पहाड़ों, जंगली और सूदूर बीहड़ों में जीवन को सबसे अधिाक सम्भव बना रही है। अवसाद के इन बीहड़ों में जीवन हर रोज अपनी अंतिम साँसे लेता जरूर है, पर संघर्ष से उपजी जिजीविषा को हरा नहीं पाता। श्रम की उष्मा से उजाला फैलाने वाली ये आदिवासी युवतियाँ सम्भाव्य संसार की सर्जना करती रहती हैं। उनकी सजना से उगा यह हरा रंग ही कवि की स्मृति में बस गया है और चेतना से रिसकर अब कविता में बोलने लगा है।

कविता का यह बोलना कुछ ऐसे ही है जैसे घर के सदस्यों का आपस में बातचीत करना। इस प्रसंग में मराठी कवि वाहरू सोनवणे का कविता के विषय में कहा एक व्यक्तिगत अनुभव याद आता है "एक गाँव में एक झोपड़ी के आगे 15–20 लोग हकट्ठे होकर बैठे हुए थे। उनमें कुछ बूढ़ी औरतें भी थी। वे कविता क्या है, समझते ही नहीं थे। कविताओं के बारे में उनकी समझ क्या है मैनें यह जानना जरूरी समझा। मैंने अपनी कविताओं की डायरी निकाली और भिलोरी कविताएँ पढ़ने लगा। मेरी कविताएँ सुनने के बाद उन आदिवासी खेत मजदूरों ने वाह–वाह नहीं की, हँसने लगे और आखिर में बहुत गंभीर होकर कहने लगे "सही है भाई ! सच है। ये कविता नहीं यह तो हमारा जीवन ही है, जिसे तुमने जस का तस उतार कर रख दिया है।" कवि रणेन्द्र की ये कविताएँ भी सजधज कर बहुमूल्य पोशाक पहने वाह ! वाह ! की गड़गड़ाहट के बीच कवि समाज और आलोचकगणों में उच्च पद पर आसीन होने की चाहत नहीं रखती। वह तो उन मजदूरों, किसानों और नौजवानों की संगी–साथी बनना चाहती हैं तो क्रांतिकारी गीत गाते हुए हजारों के हुजूम में राजपथ की सड़कों तक पहुंच चुके हैं। वे विकास के उस तथाकथित सच पर हमला करना चाहती हैं जो आँखों पर पट्टी बांधे चल रहा है, इसलिए वह सलवा जुडूम के दानवी शासकों को देख नहीं पाता। वे रंग की उस राजनीति पर हमला करना चाहती हैं जिसके चलते सांवले और जामूनी रंग को सुन्दरता के प्रतिमानों से खारिज किया जाता रहा है।

'थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ' संग्रह की अधिाकतर कविताएँ सौन्दर्य और श्रम में एक सुन्दर संबंध बनाती दिखती हैं। इस सौन्दर्य के दो रूप हैं एक तरफ है मज़दूर योद्धा का सौन्दर्य। इस संदर्भ में कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए –

पूस माह में भी
तर–तर छूट रहा पसीना
फटी गंजी, घुटने लुंगी ...
छिलन–चोट के लाल निशान
तमणे से चमचमा रहे
बूधन कमाण्डो के सीने पर ...
देगा वह बलिदान
न बिगुल/न तिरंगा/न कोई चक्र/न सम्मान !
हमारा वीर बहादुर/जनरल–मार्शल/बूधन जवान।"

दूसरा सौन्दर्य है बैंजनी, गुमी और जामुनी रंग की आदिवासी युवतियों का जो बाज़ार में बिकते सौन्दर्यवर्धक औजारों पर निर्भर नहीं है। उन्हें उस धूप से बचना नहीं पड़ता जिसमें शहरी गोरापन कुम्हलाने लगता है। बल्कि उनका जामुनी रंग धूप में ही पक कर जवान हुआ है इसलिए वह उनका स्वाभिमान है, उनकी अपनी पहचान है। इस गर्वीले रंग ने निश्चय ही कवि की दीठ को बाँध दिया है।

'जामुनी रंग' और 'सांवरी' कविताओं की ये पंक्तियाँ देखिए –

"दुपहर निकौनी कर
जीमनें बैठी
आदिवासी युवतियाँ
रूप पर पसीने की लड़ियाँ
पारदर्शी मोतियों की
गहने की कड़ियाँ
पर सच है
सब पर भारी था
हाय ! वह जामुनी रंग"

"तुम्हारी निगाहों से
नाक की तीखी कोर से
पसीने की बूँट से
बिखरता
नमक का एक कण
शत–शत अमृत कलशों पर
भारी है
हे साँवरी !"

एक तरफ घर के बाहर धूप में पकता सौन्दर्य है तो दूसरी तरफ घर के भीतर चूल्हे की आँच में आकार लेता सौन्दर्य है। कवि के अनुभव ने इस अनुपम सौन्दर्य को अपनी कविता में बहुत सहजता से पिरोया है।

"चूल्हे की आँच में
दमदम दमकते नकबेसर पर
श्रम बूंदों के अमोल मोती,
बलि–बलि जाएँ जिन पर
सौ–सौ पूनो के चाँद
हे चान्दो ! साँवर गुईयाँ !!"

रणेन्द्र की इन कविताओं में ग्रामीण स्त्रियों का यह सौन्दर्य चाहे वो साँवर गुईयाँ विगत यौवना हो, बूधन बिरिजिया हो, बीड़ी का कश भरती स्त्री हो, धनरोपनी करती माँ या पन्नाधाय हो ये सभी स्त्रियाँ अपने शाश्वत सवालों का हल ढूँढने घर से निकलती हैं। वे शाश्वत सवाल किसी ईश्वर को पा लेने के नहीं अपने घर–गृहस्थी में, अपने समाज में जीवन को सम्मान से जीने के, उसे हर मुश्किल में संभव बनाने के हैं। हर घर में उजाला लाने के लिए हर घर से निकली इन स्त्रियों को कोई सिद्धार्थ सा नहीं कहता, ये प्रायः पुरुष शासित समाज में उपेक्षित रहती हैं। रणेन्द्र की कविताओं में इन स्त्रियों के श्रम को सौन्दर्य से जोड़ा गया है। कवि को ये स्त्रियाँ सुंदर प्रतीत होती हैं, क्योंकि ये सर्जना करती हैं। धूप–हवा और बरसात सहती तूफानों के आगे दीवार की तरह डटने वाली ये आदिवासी स्त्रियाँ, रचती हैं सैकड़ों गीत और करती हैं प्रकृति से प्रेम और प्रकृति भी उपहार स्वरूप देती है उन्हें माटी की गंध और जंगलों का साँवलापन।

ये जामुनी रंग एक मेहनतकश रंग है। ये सत्ता और शक्ति प्राप्त गोरे रंग की तरह विज्ञापन की कैद में रहना नहीं चाहता। ये खुद का शासक है। ये प्रकृति में उन्मुक्त विचरण चाहता है। ये ऐसा सौन्दर्य नहीं है जिसके लिए प्रचलित उपमा दी जाए "इसको भगवान (ग्लोबल देवता) ने फुरसत में बनाया है।" बल्कि इसे तो श्रम करते सर्वहारा ने गढ़ा है। कवि के शब्दों में –

"आत्मा के चकमक पत्थर से
सुलगाती है आग
ब्रह्मा को बाँयी ओर खिसका
खुद सृष्टा होती है स्त्री।"

सर्जनधर्मी जामुनी रंग को रणेन्द्र ने काव्य संग्रह "थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ" के माध्यम से एक जन पहचान मिली है, एक नया सौन्दर्य शास्त्र गढ़ा गया है। रंग की राजनीति के वर्चस्व पर हमला बोला है।

लेखक – रणेन्द्र, 'थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ' नामक पुस्तक से साभार, भावना बेदी, जेएनयू, मोबा. 9899213577

अगर स्वराज्य अंग्रेज़ी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसन्देह अंग्रेज़ी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों और अंग्रेज़ों का हो और इन सबके लिए हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।

–महात्मा गाँधी

^ledkyhu fgUnh miU;kl% lg&fpru* fo"k; ij t,u;w jk"Vªh; lxk"Bh

डॉ. स्नेह सुधा

भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू, नई दिल्ली की ओर से प्रो. ओमप्रकाश सिंह के संयोजन में आयोजित दो–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'समकालीन हिन्दी उपन्यासः सह–चिंतन' (1990–2014) का दिनांक 13 मार्च 2015 को सफलतापूर्वक शुभारंभ हुआ। कार्यक्रम की शुरुआत में अतिथियों का स्वागत करते हुए प्रो. ओमप्रकाश सिंह ने इस संगोष्ठी की पूरी परिकल्पना स्पष्ट की। इसके पश्चात प्रो. नामवर सिंह ने अपना उद्घाटन वक्तव्य दिया। बहस के लिए समय सीमा निर्धारित करने और उपन्यासों का विधिवत चुनाव करने के लिए उन्होंने आयोजकों को बधाई दी। उपन्यास के क्षेत्र में नए प्रयोग के लिए उन्होंने तीन उपन्यासकारों – विनोद कुमार शुक्ल, सुरेन्द्र वर्मा, मनोहर श्याम जोशी को अपने वक्तव्य में महत्व दिया। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि थे – श्री अशोक वाजपेयी, जिन्होंने उपन्यास विधा के बारे में पश्चिम के विद्वानों की दृष्टि पर विचार किया। इसके अतिरिक्त उद्घाटन सत्र में चर्चित कवि केदारनाथ सिंह ने विभिन्न वादों पर अपना मत रखा। प्रो. अजय तिवारी ने समकालीन उपन्यास को समझने के दो प्रमुख आयामों– सोवियत संघ के विघटन और भूमंडलीकरण के संदर्भ में अपनी बात रखी और प्रो.रामबक्ष ने उपन्यास विधा के समक्ष आए संकटों पर चिंता जाहिर की। भारतीय भाषा केंद्र के अध्यक्ष प्रो. अनवर आलम के धन्यवाद ज्ञापन के साथ सत्र की समाप्ति हुई।

कार्यक्रम के पहले दिन के प्रथम एवं द्वितीय सत्र में बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में बातचीत हुई। इन दो सत्रों में प्रसिद्ध कथा आलोचक श्री वीरेन्द्र यादव ने कमलाकांत त्रिपाठी के 'पाहीघर', प्रो. दुर्गाप्रसाद गुप्त ने सुरेन्द्र वर्मा कृत 'मुझे चाँद चाहिए', डॉ. विभास वर्मा ने मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'हरिया हरक्यूलिस की हैरानी', प्रो. सुरेन्द्र प्रताप ने गिरिराज किशोर के उपन्यास 'पहला गिरमिटिया', प्रो. अमरनाथ ने मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक', डॉ. रामसुधार सिंह ने गीतांजलि श्री के उपन्यास 'हमारा शहर उस बरस', डॉ. रणजीत साहा ने कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' और डॉ. सुधा सिंह ने अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथाः वाया बाईपास' पर अपना वक्तव्य रखा। प्रथम सत्र की अध्यक्षता जाने माने आलोचक प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने की। उन्होंने अपने वक्तव्य में यह स्वीकार किया कि चयनित कालखंड लेखिकाओं के उपन्यासों का दशक है जो साहित्य में नई दृष्टि और प्रवृत्तियाँ लेकर सामने आईं। दूसरे सत्र की अध्यक्षता की – प्रो. निर्मला जैन ने। उन्होंने विस्तार से इस सत्र के सभी उपन्यासों पर अपनी राय रखी और निर्मल वर्मा के उपन्यास 'अंतिम अरण्य' पर अलग से विचार किया। इस उपन्यास को उन्होंने एक विचारवान व्यक्ति की मृत्युबोध की रचना माना। प्रथम सत्र का संचालन किया प्रो. देवेन्द्र चौबे ने और द्वितीय सत्र का संचालन किया डॉ. विद्याशंकर सिंह ने।

14 मार्च 2015 को आयोजित प्रारंभिक दो सत्रों में इक्कीसवीं सदी के महत्वपूर्ण उपन्यासों पर विचार विमर्श हुआ जिसमें राधेश्याम सिंह ने संजीव कृत 'सूत्रधार', सुधीर प्रताप सिंह ने मनोहरश्याम जोशी के 'क्याप', विवेकानन्द उपाध्याय ने मंजूर एहतेशाम के 'बशारतमंजिल', बजरंग बिहारी तिवारी ने श्रीलाल शुक्ल के 'राग–विराग', सत्यपाल शर्मा ने रणेन्द्र के उपन्यास 'गायब होता देश', जितेन्द्र श्रीवास्तव ने अखिलेश के 'निर्वासन', विनोद तिवारी ने कैलाश वनवासी कृत 'लौटना नहीं है' और गोपाल प्रधान ने अमरकांत कृत 'इन्हीं हथियारों से' पर अपने विचार व्यक्त किये। तीसरे सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. रविभूषण ने आखिरी कलाम उपन्यास के माध्यम से हमारे समय को समझने में बरती जाने वाली सावधानियों पर विचार किया और चौथे सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. चंद्रकला त्रिपाठी ने 'सेज पर संस्कृत के माध्यम से धर्मांतरण के प्रश्न पर गंभीर बहस की। इन दो सत्रों का संचालन क्रमशः डॉ. शीतांशु एवं डॉ. कमलेश वर्मा ने किया।

कार्यक्रम के आखिरी सत्र में हमारे समय के उपन्यासों के बारे में महत्वपूर्ण रचनाकारों ने अपने विचार रखे। इस सत्र में प्रो. गंगाप्रसाद विमल, प्रो.वरयाम सिंह, प्रो रामबक्ष और भगवानदास मोरवाल ने अपने वक्तव्य रखे। सत्र की अध्यक्षता चर्चित कथाकार काशीनाथ सिंह और संचालन डॉ. कामेश्वर प्रसाद सिंह ने किया। उन्होंने विस्तार से हमारे समय के कथा साहित्य की समीक्षा की। निश्चय ही अपने स्वरूप में यह सत्र समकालीन रचनाधर्मिता को समझने में महत्वपूर्ण रहा। संगोष्ठी में उपन्यास के ढाँचे से लेकर, उसमें आए परिवर्तनों और वर्तमान समय में उसकी सार्थकता जैसे मुद्दों पर विस्तृत बात–चीत हुई। संयोजक के धन्यवाद ज्ञापन के साथ संगोष्ठी की समाप्ति हुई।

–डॉ.स्नेहसुधा, आकृति चंद्रा

çsl foKfIr vkfnoklh lkfgR;&2
dk ykdkiZ.k o xk"Bh

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तलकालय की ओर से आयोजित एक कार्यक्रम में जेएनयू के कुलपति सुधीर कुमार सोपोरी और वरिष्ठ समाजशास्त्री प्रो. आनंद कुमार ने 'आदिवासी साहित्य' नामक पत्रिका के अप्रैल–जून 2015 अंक का लोकार्पण किया और वरिष्ठ पत्रकार दिलीप मंडल, अनीता भारती और प्रो. अनवर आलम ने 'हाशिए का समाज और पत्रकारिता' विषय पर अपने विचार व्यक्त किये। इससे पहले पत्रिका के संपादक डॉ. गंगा सहाय मीणा ने कहा कि यह पत्रिका आदिवासी साहित्य, समाज, कला, संस्कृति, इतिहास के संकलन, संरक्षण और मूल्यांकन की दिशा में एक राष्ट्रीय स्तर की पहल है और हमें खुशी है कि इसके पहले अंक को देशभर से सकारात्मक प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं। इस अवसर पर जेएनयू के कुलपति प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी ने कहा कि इस मुहिम को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाने की जरूरत है। प्रो. आनंद कुमार ने कहा कि भारतीय इतिहास की समग्र चेतना इस पत्रिका के माध्यम से अभिव्यक्त हो रही है, यह इस पत्रिका की ऐतिहासिक भूमिका है। वरिष्ठ पत्रकार दिलीप मंडल ने 'हाशिए का समाज और पत्रकारिता' विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भारत में पत्रकारिता के समाजशास्त्र पर गंभीर शोध की आवश्यकता है। न्यूजरूम की संरचना पर बात करना अभी तक अश्लील माना जाता है। साझा सुख और साझा दुख के बिना राष्ट्र की परिकल्पना अधूरी है। भारतीय भाषा केन्द्र के अध्यक्ष प्रो. अनवर आलम ने कहा कि धीरे–धीरे लोकतंत्र का विस्तार हाशिए के समाज तक भी हो रहा है, साहित्य में दलित साहित्य और आदिवासी साहित्य उसी की अभिव्यक्ति है। तथाकथित मुख्यधारा के पैमानों पर सवाल उठाने का समय आ गया है। अनीता भारती ने कहा कि यह पत्रिका हिंदी साहित्य और पत्रकारिता को नई भाषा और प्रतिमान उपलब्ध कराती है। जेएनयू केन्द्रीय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ. रमेश गौड़ ने कहा कि जेएनयू पुस्तकालय हमेशा नई पहलों का स्वागत करती है। इस तरह की पहलें विद्यार्थी, अध्यापक और पुस्तकालय के बीच एक कड़ी का काम करती हैं। कार्यक्रम का संचालन गणेश मांझी ने किया।

çsl&foKfIr
tsu;w esa ^vkfnoklh lkfgR;* dk ykdkiZ.k vkj ifjppkZ

जेएनयू में आदिवासी दर्शन और समकालीन आदिवासी लेखन की त्रैमासिक पत्रिका 'आदिवासी साहित्य' का महाराष्ट्र से आए मशहूर साहित्यकार वाहरू सोनवणे, रांची से आईं झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा की महासचिव वंदना टेटे, आदिवासी मानवाधिकार कार्यकर्ता ग्लैडसन डुंगडुंग, स्कूल ऑफ लैंग्वेज की डीन प्रो. वैश्ना नारंग, भारतीय भाषा केन्द्र के अध्यक्ष प्रो. अनवर आलम और आदिवासी कार्यकर्ता अभय खाखा द्वारा लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर पत्रिका के संपादक गंगा सहाय मीणा ने पत्रिका की पृष्ठभूमि बताते हुए कहा कि इन दिनों हिंदी अकादमिक जगत में आदिवासी साहित्य को लेकर काफी भ्रम की स्थिति है और दूर–दूराज में बड़ी संख्या में सक्रिय आदिवासी रचनाकारों की आवाज दिल्ली तक नहीं पहुंच पा रही, इसी को तोड़ने के लिए आदिवासी दर्शन को आधार बनाकर हमने राष्ट्रीय स्तर की यह पत्रिका शुरू की है। मीणा ने आगे कहा कि आदिवासी साहित्य की परंपरा को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है – मौखिक पुरखा परंपरा, आदिवासी भाषाओं में हो रहा आदिवासी लेखन और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हो रहा समकालीन आदिवासी लेखन। इस पूरी पंरपरा को सामने लाकर ही आदिवासी साहित्य की मुकम्मल तस्वीर बन सकती है।

इस अवसर पर वरिष्ठ आदिवासी साहित्यकार वाहरू सोनवणे ने कहा कि हम साहित्य के उन सारे मानकों को खारिज करते हैं जो दूसरों ने हमारे ऊपर थोपे हैं। बाहरी समाज की सोच व्यक्तिवादी है, इसे आप आजादी की लड़ाई के नारों में भी देख सकते हैं जैसे – 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' या 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'। अंग्रेजों के खिलाफ असली लड़ाई आदिवासियों ने लड़ी क्योंकि उन्होंने आदिवासियों के जंगलों को उनसे छीन लिया जो उनका जीवनाधार था। अंग्रेजों से लड़ते हुए बहुत सारे आदिवासियों को फांसी पर चढ़ाया गया लेकिन पूर्वाग्रहपूर्ण इतिहासलेखन में उसे जगह नहीं दी गई। सोनवणे ने आगे कहा कि जो मुक्तिकामी साहित्य को खारिज करते हैं वे वर्चस्ववादी हैं। जो व्यवस्था मानव–मानव में भेद करती है, हमें उस पर सवाल उठाना चाहिए। वे हमें उस भेदभावपूर्ण व्यवस्था में शामिल होने के लिए कहते हैं। जबकि आदिवासी एक समतापूर्ण व्यवस्था में सदियों से जीता आ रहा है। बाहरी समाज से आए समाजसेवी और एनजीओ आदिवासी समाज को बाहरी ढांचे में बिठाने की कोशिश में उनको तबाह कर रहे हैं। अगर हमें आदिवासियों को जानना–समझना है तो सबसे पहले हमें उनकी भाषा सीखनी होगी और उनसे संवाद करना होगा।

कार्यक्रम में झारखंड से आई झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा की महासचिव वंदना टेटे ने कहा कि आदिवासी साहित्य की परंपरा बहुत पुरानी है। उस पर गंभीर शोध की आवश्यकता है। 1928 में आदिवासियों की पहली पत्रिका निकली लेकिन उसका कोई नोटिस नहीं

लिया गया। आदिवासी नेता जयपाल सिंह मुंडा ने 'आदिवासी सकम' नाम से मशहूर पत्रिका निकाली लेकिन इतिहास में उसको जगह नहीं दी जाती। आदिवासियों की चुनौती दोहरी हैं – आर्थिक और सांस्कृतिक। दोनों क्षेत्रों में आदिवासियों को जागरुक और एकजुट करने की जरूरत है।

आदिवासी मानवाधिकार कार्यकर्ता ग्लैडसन डुंगडुंग ने कहा कि बाहर के लोग आदिवासियों के बारे में भ्रम फैला रहे हैं। इसी को दुरुस्त करने के लिए इस तरह की पत्रिकाओं की जरूरत है। आदिवासियों की स्थिति उस हिरण की सी है जो चारों ओर से शिकारियों द्वारा घेर लिया गया है। आदिवासी कार्यकर्ता और शोधकर्ता अभय खाखा ने कहा कि आदिवासियों पर किये गए नृतत्वविज्ञानी अध्ययनों ने आदिवासियों की नकारात्मक छवि का निर्माण किया है और उसी के आधार पर आदिवासी–विरोधी कानून बने है। 'आदिवासी साहित्य' पत्रिका के माध्यम से आदिवासियों का सच सामने आएगा। आदिवासी दिमागों पर किताबों द्वारा कब्जा किया गया है, उसे किताबों द्वारा ही तोड़ा जा सकता है।

इस अवसर पर दिलीप मंडल, प्रो. गोबिंद प्रसाद, पी.सी. हैंम्ब्रम, डॉ. बन्नाराम, वीरेन्द्र , राजकुमार, डॉ. आसिफ जहरी, डॉ. शिवप्रकाश, मीनाक्षी मीणा आदि भी मौजूद थे। कार्यक्रम का संचालन पत्रिका के उप–संपादक गणेश मांझी ने किया।

M,- xxk lgk; eh.kk dk ;sthlh fjlp vokM

सवाई माधोपुर जिले की वजीरपुर तहसील के सेवा गांव के निवासी डॉ. गंगा सहाय मीणा को विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा यू.जी.सी. रिसर्च अवार्ड 2014–16 के लिए चुना गया है। उल्लेखनीय है कि डॉ. गंगा सहाय मीणा पिछले 8 वर्षों से देश के शीर्ष विश्वविद्यालय जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्लीं में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। उन्होंने इसी विश्वविद्यालय से एम.ए., एम. फिल. और पीएच.डी. की डिग्रियां प्राप्त की हैं। 10 जुलाई 1982 को सेवा गांव के एक किसान परिवार में जन्मे डॉ. गंगा सहाय मीणा 'आदिवासी साहित्य' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका के संस्थापक–संपादक भी हैं। इन्होंने राजस्थान के आदिवासियों पर अपना पीएच.डी. किया और जेएनयू से पहले दिल्ली विश्वविद्यालय और पांडिचेरी विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कर चुके हैं। डॉ. गंगा सहाय मीणा पिछले एक दशक से अधिक समय से लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। बहुवचन, शब्द योग, कथादेश, अरावली उद्घोष, युद्धरत आम आदमी, अखडा, सबलोग, जनपथ, हॉराइजन, समसामयिक सृजन, समालोचन, फॉरवर्ड प्रेस, इंडिया टुडे आदि पत्रिकाओं में उनके शोध पत्र व आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा वे हिन्दुस्तान, राष्ट्रीय सहारा, दैनिक भास्कर, जनसत्ता, अमर उजाला, राजस्थान पत्रिका, देशबंधु, जनसंदेश टाइम्स आदि पत्रों के लिए भी नियमित लिखते रहे हैं और उनके सौ से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा डॉ. गंगा सहाय मीणा 50 से अधिक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में मुख्य वक्ता के रूप में शिरकत कर चुके हैं। डॉ. मीणा को 2011 में दलित आदिवासी संवाद लेखन पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। 'आदिवासी साहित्य विमर्श' नामक इनकी एक किताब भी प्रकाशित हो चुकी है। यूजीसी द्वारा दिए जा रहे इस अवार्ड के तहत डॉ. मीणा अगले दो साल 'समकालीन हिंदी आदिवासी लेखन' पर शोध करेंगे जिसका खर्च विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उठाएगा।

çl foKfIr

çk- rqylh jke dh ;kn esa tsu;w esa 'kksd lHkk

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र की ओर से सोमवार सुबह स्कूल ऑफ लैंग्वेज के कमेटी रूम में प्रो. तुलसी राम की याद में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर स्कूल ऑफ लैंग्वेज की डीन प्रो. वैश्ना नारंग ने कहा कि मैंने प्रो. तुलसी राम के विद्यार्थी दिनों से उनकी निष्ठा को देखा है – अपने विषय के प्रति और लोगों के प्रति भी। भारतीय भाषा केन्द्र के अध्यक्ष प्रो. अनवर आलम ने कहा कि उनके विचारों की खुशबू हमेशा जीवित रहेगी और हमें इसे आगे ले जाना है। इस अवसर पर डॉ. रामचंद्र ने कहा कि प्रो. तुलसी राम की वजह से मेरे व्यक्तित्व में बहुत बदलाव आया और मैंने दोस्ताना रिश्ते कायम करना और उन्हें निभाना उनसे सीखा। डॉ. रमन प्रसाद सिन्हा ने कहा कि तुलसी राम जी के व्यक्तित्व की खासियत बिना कटु हुए किसी की आलोचना करना था। इस अवसर पर प्रो. अपराजित चट्टोपाध्याय ने कहा कि उन्होंने इक्वल अपोर्चुनिटी सेल में रहते हुए दलितों के साथ दृष्टिबाधित छात्रों के लिए भी बहुत काम किया। उनका सपना था ब्रेल प्रेस की स्थापना और इसके लिए वे आखिर तक प्रयास करते रहे। मणिकर्णिका का लिप्यांकन करने में मदद करने वाली मुन्नी भारती ने कहा कि आखिरी दिनों में सर की दो चिंताएं थीं – आत्मकथा का तीसरा भाग और बेटी। इस बीच मैंने उनकी मानवीयता के विविध पक्षों को बहुत करीब से देखा और जाना। प्रो. तुलसीराम के समकालीन प्रो. सैयद एनुल हसन ने कहा कि उनका कमरा एक क्लासरूम की तरह था जिसमें वे छात्रों की मदद करते थे। साथ ही वे कविताएं भी लिखते थे जिसे उन्होंने बहुत कम

लोगों के साथ साझा किया। प्रो. आर.एन. मेनन ने कहा कि वे संतुलित और स्पष्ट विचारों वाले व्यक्ति थे। प्रो. डी.के. लोबियाल ने कहा कि उनका जाना एक व्यक्ति नहीं, एक संस्था की क्षति जैसा है। प्रो. रामबक्ष ने कहा कि वे स्पष्ट राय रखने वाले व्युक्ति थे जो एक लेखक के लिए जरूरी है। अपनी पीड़ा को जिस तरह जिया, उससे हम सबको सीखना चाहिए। भारतीय भाषा केन्द्र की विद्यार्थी जली ने कहा कि उनके कुटुंबजनों की बहुत इच्छा थी कि वे उनसे मिल पाते। प्रो. तुलसी राम भी एक बार अपने गांव जाना चाहते थे लेकिन ऐसा नहीं हो सका। भारतीय भाषा केन्द्र के प्राध याापक डॉ. गंगा सहाय मीणा ने प्रो. तुलसीराम को लोकतांत्रिक मूल्यों और संवादधर्मिता का व्यक्ति और लेखक बताया और कहा कि उनके साहित्य के मूल्यांकन के लिए गंभीर परिचर्चा की आवश्यकता है।

çl foKfIr
tµu;u e/ke/kke lu euk vkfnoklh fnol

शनिवार शाम देश के प्रतिष्ठित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में वहां के अध्यापकों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों ने मिलकर धूमधाम से विश्व आदिवासी दिवस मनाया. कार्यक्रम की शुरूआत मांदल बजाकर और अतिथियों का आदिवासी परंपरानुसार स्वागत कर की गई। वरिष्ठ लेखिका और संपादक रमणिका गुप्ता ने कहा कि आदिवासी संस्कृ ति की रक्षा के लिए आदिवासी भाषाओं को बचाया जाना जरूरी है। साथ ही उन्होंने संविधान में दर्ज अनुसूचित जनजाति शब्द के प्रयोग पर भी आपत्ति जताते हुए उसे बदलकर आदिवासी करने की मांग उठाई। उन्होंने कहा कि इस दुनिया के पहरुआ आदिवासी हैं। दुनियाभर के जल–जंगल–जमीन पर आदिवासियों का हक है। इस अवसर पर जेएनयू कंप्यूटर विज्ञानी प्रो. सोनाझरिया मिंज ने आदिवासी समाज की एकजुटता पर बल दिया। डॉ. अजित कन्ना ने अंडमान के आदिवासियों की समस्याओं को रखा। एशियन सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स के निदेशक सुहास चकमा ने संयुक्त राष्ट्र संघ में आदिवासियों के हितों के लिए चल रही मुहिमों का इतिहास और ब्यौरा पेश किया और भारत सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये की आलोचना की। जेएनयू के डॉ. गंगा सहाय मीणा ने कहा कि मुनाफे की अंधी दौड़ में फंसी दुनिया को आदिवासी दर्शन ही खत्म होने से बचा सकता है। हमें आदिवासियों के आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ खड़ा होना होगा। हम संयुक्त राष्ट्र संघ से मांग करते हैं कि 21वीं सदी को आदिवासियों की सदी घोषित करे। जामिया की डॉ. आइवी हांसदा ने आदिवासी भाषाओं के साहित्य के अनुवाद पर बल दिया। जामिया की डॉ. गोमती बोदरा ने आदिवासी संस्कृति के संरक्षण पर बल दिया। एम्स के डॉ. हीरालाल अलावा ने शिक्षण संस्थाओं में आदिवासियों से होने वाले भेदभाव का सवाल उठाया। इस अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया जिसमें देश भर के विभिन्न आदिवासी समुदायों के गीत और नृत्य प्रस्तुत किये गए। कार्यक्रम का संचालन गणेश मांझी और रजनी टोप्पो ने किया। कार्यक्रम में दिलीप मंडल, सीले एंथनी, मुक्ति तिर्की, उज्ज्वला ज्योति तिग्गा, उषा किड़ो, नीतीशा खलखो, राजबीर सिंह, वीरेन्द्र सिंह आदि ने भी भाग लिया। इस अवसर पर जेएनयू के स्कूल ऑफ सोशल साइंस के आगे महुआ का पौधा भी लगाया गया।

मुझे खेद तो यह है कि प्रान्तों की मातृभाषा हिंदी है वहां भी उस भाषा की उन्नति करने का उत्साह दिखाई नहीं देता है। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी–अपनी भाषाओं को उनके योग्य स्थान नहीं देते तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।

–महात्मा गाँधी

हिन्दी की होड़ किसी प्रांतीय भाषा से नहीं, केवल अंग्रेज़ी के साथ है।

–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

jkt Hkk"kk;h xfrfof/k;k

विश्वविद्यालय का हिंदी अनुभाग (प्रशासन भवन) राजभाषा हिंदी के व्यापक प्रचार प्रसार एवं कार्यान्वयन की दिशा में सतत् अग्रसर रहता है। राजभाषा हिंदी के लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास जारी हैं। मंजिल अभी दूर है परन्तु सार्थक प्रयासों से सब संभव है।

इसके द्वारा किए गए प्रयास निम्न हैः–

1. हिंदी अनुवाद कार्य उपलब्ध कराना।
2. नियमित हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन।
3. ऑनलाइन हिंदी तिमाही प्रगति रिपोर्ट भेजना।
4. प्रत्येक तिमाही में विभागीय रा.भा. कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन।
5. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में नियमित भागीदारी।
6. जेएनयू की वार्षिक रिपोर्ट का हिंदी अनुवाद करना।
7. गृह–पत्रिका का नियमित प्रकाशन।
8. जेएनयू वेबसाइट के द्विभाषीकरण के लिए सतत प्रयास।
9. विभिन्न कोड/मैनुअलों का हिंदी अनुवाद करना।
10. राजभाषा अधिनियम की धारा 3 (3) का सम्यक अनुपालन सुनिश्चित करना।
11. हिंदीतर कार्मिकों के इन–हाउस हिंदी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।
12. हिंदी पखवाड़ा एवं हिंदी दिवस का आयोजन।
13. नियमित कार्मिकों के लिए 'मूल हिंदी टिप्पणी/आलेखन प्रोत्साहन योजना' चलाना।
14. प्रतिवर्ष गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान (मेमोरियल लेक्चर) का आयोजन।
15. सभी कंप्यूटरों में यूनीकोड इंस्टाल कराना।
16. ई–ऑफिस में हिंदी में काम की सुविधा उपलब्ध कराना।
17. विभिन्न शाखाओं में प्रयोग किए जा रहे फार्मों का हिंदी में अनुवाद उपलब्ध कराना।

l>ko@jpuk,¡ vkeaf=r gSA

'जेएनयू परिसर' के सुधी पाठकों से अनुरोध है कि पत्रिका के बारे में अपने बहुमूल्य सुझाव एवं आगामी अंकों के लिए लेख व रचनाएं आदि कृपया निम्न पते पर भिजवाएं। अपने लेख, कहानी, कविता, समीक्षा आदि कृतिदेव–10 फॉट में हार्ड कापी सहित निम्नलिखित पते पर मेल करें : हिंदी अधिकारी, हिंदी अनुभाग, 301, प्रशासन भवन, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, न्यू महरौली रोड, नई दिल्ली–110067, फोन नंः 011–26704023 ई–मेल : hindiunit@mail.jnu.ac.in

नए प्रकाशन

सृष्टि पर पहरा : केदारनाथ सिंह। हिंदी के वरिष्ठतम कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं का नवीनतम काव्य संकलन जिसमें आख्यान और गद्य के विभिन्न रूपों को काव्य में रूपांतरित करने की अद्भुत कला दिखाई पड़ती है।
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
मूल्य 250/–
ISBN N0. 978–81–267–2590–8

केदारनाथ सिंह की कविता : बिम्ब से आख्यान तक : गोबिन्द प्रसाद। केदारनाथ सिंह के कवि कर्म तथा काव्य भाषा को रेखांकित करने वाली पहली आलोचनात्मक कृति।
स्वराज प्रकाशनः नई दिल्ली,
मूल्य 250/–
ISBN N0. 978–93–81582–59–6

अंतः सूत्रों से संवाद डॉ. गंगा प्रसाद विमल जी द्वारा समय–समय पर लिखित प्रस्तुत निबंधों में पाठक को उस सतत अनुगूँज का आभास होगा जो अन्तः सूत्रों की ही ध्वनियों से विकसित हुई है।
विजया बुक्स प्रकाशन, दिल्ली,
मूल्य 250/–

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन एवं कृष्ण काव्य परम्पराः देवशंकर नवीन। यह पुस्तक भक्ति आन्दोलन के साथ कृष्ण काव्य परम्परा में सगुण भक्ति पर नए सिरे से प्रकाश डालती है और कृष्ण काव्य परम्परा में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए आवश्यक कृति है।
विजया बुक्स, दिल्ली,
मूल्य 195/–

टी वी समाचार की दुनियाः कुमार कौस्तुभ ने पुस्तक में उद्धरण के रूप में 'खबरः एक कहानी का नाम' देकर आत्मानुभव को कौशल से लेखनीबद्ध किया है।
प्रस्तुत पुस्तक में टीवी खबर और उसके परिवेश की समग्रता दिशा–निर्देशों के साथ खुलकर उजागर हुई है।
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य 500/–
ISBN N0. 978–93–83233–45–8

राजकमल चौधरी जीवन और सृजन देव शंकर नवीनः प्रस्तुत पुस्तक में मैथिली और हिंदी में व्याप्त राजकमल के जीवन और लेखन संबंधी तमाम आवरणों को अपनी प्रखर आलोचकीय प्रतिभा से छिन्न–भिन्न किया है बल्कि राजकमल चौधरी के प्रबल व्यक्तित्व को सामने लाने का साहस भी किया है।
प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली,
मूल्य 185/–
ISBN N0. 978–81–230–1788–4

कविता का पार्श्व : गोबिन्द प्रसाद। आलोचना और समीक्षा कर्म के धागों से बुनी यह कृति कई पीढ़ियों के रचना कर्म पर दृष्टिपात करती है।
शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली,
मूल्य 225/–
ISBN N0. 978–93–81611–62–3

बस्ती कभी नहीं बसती : बृजेश कुमार की कविताओं का पहला काव्य संकलन।
ईशा ज्ञानदीप, शालीमार बाग, नई दिल्ली,
मूल्य 250/–
ISBN N0. 978–93–82543–03–9

"विश्वविद्यालय की विशेषताएँ होती हैं, मानववाद, सहिष्णुता, तर्कशीलता, विचार का साहस और सत्य की खोज। विश्वविद्यालय का काम है उच्चतर आदर्शों की ओर मनुष्य जाति की सतत यात्रा को संभव करना। राष्ट्र और जनता का हित तभी हो सकता है जब विश्वविद्यालय ठीक से अपने दायित्वों का निर्वाह करें।"

— जवाहरलाल नेहरू

परिसर वीथिका

1. स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त, 2015) के अवसर पर जेएनयू के कुलपति ध्वजारोहण करते हुए।
2. 15 अगस्त, 2015 के अवसर पर सरस्वती वंदना और राष्ट्रगान प्रस्तुत करते हुए केन्द्रीय विद्यालय (प्राथमिक) के छात्र एवं छात्राएं।
3. जेएनयू के कुलपति प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी उक्त अवसर पर स्कूली बच्चों को पुरस्कार भेंट करते हुए।
4. जेएनयू के कुलसचिव डॉ. संदीप चटर्जी उक्त अवसर पर स्कूली बच्चों को पुरस्कार भेंट करते हुए।
5. स्वतंत्रता दिवस के शुभ अवसर पर जेएनयू कार्मिकों के बच्चे सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेते हुए।
6. जेएनयू के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ स्कूली बच्चों का सामूहिक फोटो।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के लिए कुलसचिव डॉ. संदीप चटर्जी द्वारा प्रकाशित।
मुद्रक : अलकनन्दा एडवरटाइजिंग प्रा. लि., ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेज–II, नई दिल्ली–110020